प्रकाशक :
जमनालाल जैन, मंत्री
भारत जैन महामण्डल, वर्धा

प्रथम संस्करण : २०००
फरवरी १९५२
मूल्य : एक रुपया

प्रकाशक की ओर से

महात्माजी की यह दूसरी पुस्तक, 'मेरे साथी' पाठकों तक पहुँच रही है। इसके पहले 'मारने की हिम्मत' कहानी संग्रह प्रस्तुत कर चुके हैं।

महात्माजी देश के उन कर्मठ और निष्पृह विचारकों मे से है जिन्होने जीवन भर दिया ही दिया, कहा कुछ भी नही। वे धर्म, समाज, साहित्य, राजनीति के विद्वान ही नही, ध्येयवादी स्पष्ट विचारक और मानव-मनोविज्ञान के आचार्य हैं। वे अब वृद्ध हो गए हैं। हमने विचार किया कि महात्माजी ने जीवन मे जो कुछ लिखा है और अनुभव किया है वह यदि क्रम-बद्ध प्रकाशित हो जाय तो इससे समाज और देश का बहुत हित होगा। इसके लिए हमने एक अपील भी निकाली जिसमे इनकी १६ पुस्तकों के प्रकाशन की योजना है।

ये संस्मरण उनके साथियों के हैं। सस्मरण लिखने की परम्परा हिन्दी में वढती पर है जरूर, पर महात्माजी ने इनके लिखने में जिस ढग, शैली को अपनाया है वह हिन्दी के लिए सर्वथा मौलिक है। उन्होंने एक जगह लिखा भी है कि आदमी को ऊपर ऊपर से देखने की उनकी आदत नही है। इन संस्मरणो मे बीसवी सदी के पूर्वार्द्ध का जैन समाज का एक प्रवृत्ति परक इतिहास हमारे सामने आ जाता है और उन गुणों की ओर वह पाठक को आकर्षित करता है जो एक समाज सेवक में होना आवश्यक है।

इस पुस्तक की छपाई का खर्च स्व० जे. एल. जैनी ट्रस्ट के ट्रस्टी श्रीमान् रा. ब. सेठ लालचंदजी सेठी उज्जैन तथा श्री. जौहरीलालजी मित्तल इन्दौर ने प्रदान किया है। इसके लिए भारत जैन महामंडल ट्रस्ट तथा ट्रस्टियों का अनुगृहीत है।

महात्माजी की और भी कुछ पुस्तके पाठकों तक पहुँचाने के प्रयत्न मे है।

वर्धा,
२७-२-५२
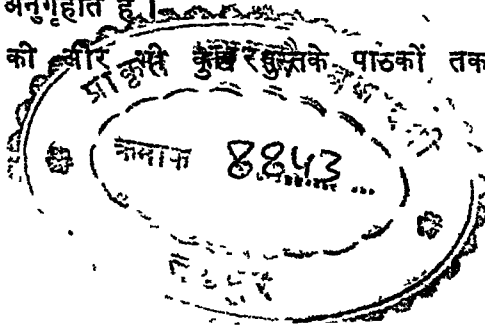
—प्रकाशक

अनुक्रम

			पृष्ठ
१. भाई अजितप्रसादजी	...	...	१
२. अर्जुनलाल सेठी	...	...	१२
३. गुरु गोपालदास	...	...	२०
४. बाल जैनेन्द्र	...	...	२५
५. रामदेवी बाई	...	...	३७
६. बाबू दयाचन्द्र गोयलीय	...	...	१००
७. जुगमन्दरलालजी	...	...	१०८
८. वीरचंद गांधी	...	...	१२५

मेरे साथी—

स्व० रा. ब. जुगमन्दरलालजी जैनी
बैरिस्टर, हाईकोर्ट जज, इन्दौर

: १ :

भाई अजितप्रसादजी

२२ जनवरी सन् १९१० को जयपुर में पहले पहल मेरी जान-पहचान बाबू अजितप्रसादजी से हुई। वहा उनके साथ उनकी बडी बेटी सरला भी आई हुई थी। २२ जनवरी सन् १० को समाज में मेरी क्या जगह थी यह सवाल अगर कोई मुझसे पूछने लगे तो मै यही जवाब दूगा कि कहीं कुछ भी नही। ऐसे न-कुछ आदमी को अजितप्रसादजी जैसा समाज में प्रतिष्ठित आदमी दस मिनिट मे इतना अपनाले कि दूसरे ही महीने मे इस बात की तैय्यारी हो जाय कि मेरा और अजितप्रसादजी का कुटुंब साथ-साथ यात्रा के लिए निकल पड़े, तब सिवा इसके क्या कहा जा सकता है कि अजितप्रसादजी का मन शीशे की तरह साफ था। स्वच्छ और निर्मल मन से इतना ही नफा नही होता कि दूसरे उसकी स्वच्छता को जानकर उसकी ओर खिचे, पर यह भी होता है कि वह स्वच्छ मन दूसरे के मन मे प्रवेश करके उस को समझ लेता है और हो सके तो उसे कुछ स्वच्छता भी देता है और फिर दो दिल एक होने में देर नही लगती।

अजितप्रसादजी की बेटी सरला उन दिनो बीस बरस की रही होगी। वह नाम की सरला नही, स्वभाव की सरला थी और आज के दिन तक वैसे ही सरल स्वभाव की बनी हुई है। जिस यात्रा की बात मैने ऊपर कही है उस में वह साथ थी। उस यात्रा का जिक्र इस लेख में शायद ही कुछ रहे, वह अलग लेख का विषय है जिसका जिक्र फिर कभी किया जायगा।

हा तो बाबू अजितप्रसादजी ने अपने स्वच्छ मनका मेरे मन पर जो असर डाला वह उनके स्वर्गवास होने तक कायम रहा और उनसे मेरी मित्रता और निकटता दिन दिन बढ़ती ही रही। ऋषियों ने सज्जन

की मित्रता की उपमा वारह वजे के वाद की परछांई से दी है, जो शुरू में वहुत थोड़ी और धीरे धीरे वढ कर इतनी वढ़ जाती है कि उसका अन्दाजा नही लगाया जा सकता। पर अजितप्रसाद जी के मामले में तो इससे भी वढकर वात हुई। उनसे तो शुरू में ही इतनी गहरी मित्रता हो गई मानो वरसो की हो। वह धीरे धीरे आगे वढ़ी या नहीं इसका तो अंदाजा लगाया नही जा सकता, क्योंकि वह दस मिनिट में ही इतनी गहरी हो गई थी कि उससे आगे वढने के लिये कोई जगह ही न वच रही थी। तव फिर यही कहा जा सकता है कि वह मित्रता स्वच्छसे स्वच्छतर हुई और फिर स्वच्छतम होती चली गई। इसलिए मेरी नजरों मे तो भाई अजितप्रसादजी सज्जन कोटिसे निकलकर महा सज्जन कोटिमें आ जाते है।

ऋजुता अगर सचमुच धर्मका अंग है तव तो मै यह कहूगा कि यह गुण भाई अजितप्रसादजी में इस हदको पहुंच गया था कि उस हद तक पहुचा हुआ मुझे किसी दूसरे में देखने को नही मिला। अव भी मेरी आँखो के सामने वह दृश्य आजाता है, जव वह वहुत वडा नुकसान कर डालने पर नीची निगाह कर अपने नौकर पर इस तरह गुस्सा होते थे— "देखो भाई, तुम हमारा कितना नुकसान कर देते हो, तुमको सोचना चाहिए कि तुम इस वात का पैसा पाते हो कि हमारा नुकसान न होने पावे। अव जव तुम इस तरह नुकसान कर देते हो तो अव तुमही वताओ मै तुम्हारा क्या करूं, वस जाओ, अपने काम मे लगो, आइन्दा अगर ऐसा हुआ तो अव तुम ही वताओ मै तुम्हे कैसे रख सकूंगा।" यह था भाई अजितप्रसादजी का जोर का गुस्सा। पढ़ने वाले यह खूव समझलें कि यह शब्द भी बड़ी धीमी आवाज में कहे जाते थे। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि नीची निगाह करके कितने ही जोर के गुस्से में निकले हुए शब्द ऊंची आवाज के हो ही नही सकते।

ऋजुता यानी सरलता के साथ साथ दूसरी वात जो अजितप्रसादजी में थी वह थी अपनी कमी को फौरन मान लेना। तो ऐसा मालूम होता है कि सरलता का गुण और कमी स्वीक

का गुण दोनों सहगामी है यानी जिसमें एक होगा उसमें दूसरा होगा ही। यह गुण तो उनमे इतना तरक्की कर गया था कि उनके पीठ पीछे भले ही कोई उनकी बुराई करले पर उनके सामने बुराई करने से पहले तो वह भाई अजितप्रसादजी के मुह से ही वह बुराई सुन लेगा जिस बुराई को उनके सामने उनसे करने को आया है। अब बताइए कहनेवाला करे तो क्या करे। अपनी बुराई आप कहने का गुण ऐसा गुण है जिसके लिए गृहस्थी तो क्या साधु भी तरसते हैं। अगर कोई मुझसे पूछे तो मै यह कहूँगा कि अकेला यही एक गुण अनगिनत पापों को काटने के लिए काफी है। यह गुण है भी तो ऋजुता यानी सरलता का सहभागी और यह ऋजुता धर्म के दस लक्षणो में तीसरे नंबर पर आर्जव नाम से प्रतिष्ठित है। मै तो ऐसा मानता हूं धर्म के दस लक्षणों मे से अगर कोई एक भी धर्म आदमी अपना ले तो बाकी के नौ किसी न किसी अंश में उस आदमी के अन्दर आ ही जाते हैं। क्योंकि यह दसों गुण मिल कर धर्म के लक्षण कहलाते हैं। हा यह दूसरी बात है कि किसीमें कोई एक गुण अपनी मर्यादा से ज्यादा हो जाय और इसलिये दूसरे गुणो को चमकने का मौका न दे। भाई अजितप्रसादजी मे आर्जव गुण था इसलिए क्षमा अपने आप उत्से उत्तर और उत्तम की तरफ बढ़ती चली जा रही थी। यह दूसरी बात है कि आर्जव के चमकते हुए प्रकाश मे वह हरएक को दिखाई नहीं देती थी। मै आज इस बात को समझ पाया हूं कि उनका वह नीची निगाह करके गुस्सा करना इसी आर्जव गुण का सहगामी गुण था।

भाई अजितप्रसादजी को अपनी इन्द्रियो पर खासा काबू हासिल था। और इसी वजह से उनके मनके घोड़े की लगाम उनके विवेक के हाथ से कभी निकल नही पाती थी। इतना ही नहीं, कभी ढीली भी नही हो पाती थी। जिस वक्त वह विधुर हुए उस वक्त उनकी ऐसी उम्र नहीं थी कि उनकी जगह कोई और आदमी होता तो दूसरा विवाह न करता। पर उन्होने कभी दूसरे विवाह की बात सोची नहीं। इतना ही नही उस ओर से उन्हे घृणा ही होगई थी। एक दिन

उन्होंने हमसे दिल्ली की एक घटना सुनाई और वह घटना यह थी कि उनके सामने एक लड़की सजा कर इसलिए लाई गई कि वह उसको अपनी संगिनी बनाने के लिए पसंद करले। इतना ही नहीं उसे कुछ इस तरह सिखाकर भेजा गया था कि वह अपने हावभावो के जरिये भी उन पर असर डाले और उसने वैसा किया भी। इसी सम्बध में उन्होंने हमें आगे बताया कि घृणित काम से मुझे उस लड़की से ही नही, बल्कि समाज की इस कुप्रथा से इतनी घृणा पैदा हुई कि मै बरदाश्त न कर सका। और बिला कुछ कहे मैं वहां से उठकर कुछ इस ढंग से चला कि उस लड़की को मालूम हो जाय कि मै उसको कितनी गिरी नजर से देखता हूं। उन्होने हमे इसी सिलसिले में यह भी बताया कि इस सब बेहयायी का असर मेरे ऊपर यह हुआ कि मेरी वासना जागने की बजाय और सोगई। ये थे हमारे बाबू अजितप्रसादजी। इतना मनपर अधिकार न होता तो अपनी संगिनी के छोड़े हुए छोटे बच्चे को वे मां से भी ज्यादा मोहब्बत से न पाल सकते। हमने उन्हे रात के दो-दो तीन-तीन बजे उठकर स्प्रिटलैप पर दूध गरम करके बच्चे को दूध पिलाते देखा हैं। वासना दबकर कितना अच्छा रूप ले लेती है, यह एक ऐसा पाठ है, जो भाई अजितप्रसादजी के जीवन से लिया जा सकता है। यहाँ यह तो समझ लेना ही चाहिए कि यह सब आर्जव गुण के सहगामी मार्दव गुण का चमत्कार था, जिसने भाई अजित-प्रसादजी के मन में बैठी वासना की कीचमे से पितृ-प्रेम का, पुत्र-प्रेम का कमल खिला दिया था। उनके इस गुण की कद्र वे ही बच्चे जान सकते है जिन्हे वासना मे डूबी विमाताओ से पाला पड़ता है।

हमने भाई अजितप्रसादजी को अपने नाना की सेवा करते देखा था। उस सेवा का जिक्र तो हम करेगे ही, पर यहाँ इतना कहे देते है कि हम उस वक्त भाई अजितप्रसादजी की उस सेवा को यही समझे थे कि यह अपनो की सेवा है। पर जब उन्होंने ब्र० शीतलप्रसादजी की उसी तरह सेवा की तब हम समझे कि सेवा उनका स्वभाव था। हम तो ऐसा मानते हैं कि यह स्वभाव उन मे पैदाइशी था। हो सकता है उनके माता या पिता में से किसी मे रहा हो और उन्हे वह तरके मे या विरासत मे मिला हो।

पर इतना कहे वगैर हम न रहेंगे कि उनके उस स्वभाव को मांझा और चमकाया भाई मोतीलालजी ने। एक बार भाई अजितप्रसाद जी की जांघ में एक फोड़ा निकला। और वह इतना बढ़ा कि चीरे की जरूरत पड़ी। उस चीरे ने भाई अजितप्रसादजी को एकदम हर तरह से नाकाबिल बना दिया। उस वक्त उनकी सेवा भाई मोतीलालजी ने की थी। और वह सेवा भी ऐसी सेवा थी कि मा के सिवाय कोई दूसरा और मुश्किल से ही कर सकता है। बस उसी सेवा ने भाई अजितप्रसादजी के भीतर स्वभाव रूप से सेवा को और भी ज्यादा चमका दिया।

जब उनके नाना बीमारी के बिस्तर पर थे, तब मै लखनऊ था। और सात दिन बराबर भाई अजितप्रसादजी के साथ रहा। उनके नाना का यह हाल था कि वे होश में रहते हुए भी इतने बेसुध रहते थे कि टट्टी-पेशाब का उन्हे कोई ध्यान ही न था। दो-तीन महीने का बच्चा भी थोडा-बहुत इशारा करना सीख जाता है और करता भी है पर वे तो इतना भी नही करते थे। उनकी सेवा करना तो मेरे खयाल से एक बार उसके लिए भी मुश्किल होता जो गंदी गलियों में घुसकर नालियों को साफ करता है। उनके नाना टट्टी-पेशाब मे लिथड़ कर इस तरह हाथ-पाव फेंकते थे कि उसमें अजितप्रसादजी को भी लिथडा देते थे। पर भाई अजितप्रसादजी थे कि उनके माथे पर हम ने कभी कोई शिकन नहीं देखी। इतना ही नही उनके होठो पर मुस्कान देखते थे। इस तरह की सेवा उन्होने एक-दो दिन नही, अगर हम भूलते नही हैं तो पखवाड़ो और महीनों की। और फिर तुर्रा यह कि जब भी भाई अजितप्रसादजी अपने नाना को गोदी मे उठाते थे तो वे इतना चिल्लाते थे और भाई अजितप्रसादजी को इतनी गालियाँ देते थे कि ठिकाना नही। उनका भी कुछ कुसूर न था। बुढ़ापे की हड्डियाँ बालकों की हड्डियाँ जैसी नही होती। वे गोदी में उठाने से दुखती थी। और मेरे खयाल से बहुत ज्यादा दुखती थी। तभी तो उनके नाना जोर से चिल्लाकर कहते थे कि कमबख्त तोड़ डाल मेरी हड्डियाँ! मार डाल मुझको। मेरी जान लेकर रहेगा। अब पाठक सोचें और बताएँ कि उन में से कितनों में यह हिम्मत है कि वे ऐसे बीमार की सेवा

कर सकें। हम तो समझ ही नहीं पाते कि रातभर पंखे के तले मुलायम गद्दोपर सोनेवाले अजितप्रसादमे सेवा का यह गुण किस तरह किस जगह जगह बनाकर रहता था। जो इस तरह की सेवा कर चुका हो उसने ब्र० शीतलप्रसादजी की सेवा किस तरह की होगी इसका अदाजा लगाया जा सकता है। वह सेवा हमारी देखी हुई नही है, इसलिए उस बारे में हम कुछ नहीं लिख सकते। पर हम यह खूब जानते हैं कि ब्र० जी को किसी और जगह इतनी अच्छी सेवा नही मिल सकती थी।

भाई अजितप्रसादजी ऐसे बुरे युग मे पैदा हुए कि जब हाथ का मैल पैसे का दान ही दान माना जाता है; और जो पैसा कैसे इकट्ठा किया जाता है और किया जा रहा है उसके बारे कहना न कहना ही अच्छा है। और जिस पैसे के बल पर जो सेवा खरीदी जाती है सेवा करनेवाले और जिसकी सेवा की जाय दोनो के लिए कितनी दुखदायी होती होती है इस के बारे मे भी कहना न कहना ही अच्छा है। ऐसे पैसे का दान दान में गिना जाय हमें तो यह भी नही सुहाता। पर करें क्या! इस युग मे जब इस तरह की हवा चल पड़ी है तो न सुहाते हुए भी उसको दान तो मानना ही पड़ता है। किसीने कभी यह सोचने की कोशिश ही नही की कि पैसा सेवा नहीं कर सकता। इतना ही नही, वह सेवा खरीद भी नही सकता। सेवा बड़े ऊचे दर्जे की चीज़ है। वह खरीदी जाती ही नही, वह खरीदी जा भी नही सकती। जो पैसे से खरीदी जाती है वह होती है दासता। दासता दुखदायी होगी ही। सेवा तो धार्मिकता के पेड़ का फल है, पर वह सुखदायी न हो ऐसा कैसे हो सकता है? हम यह भी मानने को तैयार नही कि भाई अजितप्रसादजी सेवा करते हुए दार्शनिकों की सेवा-दार्शनिकता पर ध्यान देते हो या सेवा की गहराई जानकर उसमें लगते हों। वह तो उनका स्वभाव बन गई थी और वह दूसरों के इसी तरह काम आती थी जिस तरह माता का दूध बच्चे के काम आता है या पेड़ो के फल आदमियों के काम आते है। भाई अजितप्रसादजी जितना सेवा का दान कर गए उसका मूल्य आंका जाय तो क्या कोई आंक सकता है? पर उस सेवा का लेखा-जोखा रखने का रिवाज इस युगमे तो है नही। पहले युगों में

रहा या नही इसे कौन जाने ! हमे तो ऐसा मालूम होता है कि इस का हिसाव उस दिल में पूरा लिख जाता है जिसकी सेवा की जाती है तभी तो भाई अजितप्रसादजी आये दिन भाई मोतीलालजी के गीत गाते रहते थे, जिन्होने फोडे की वीमारी के समय उनकी सेवा की थी।

भाई अजितप्रसादजी सरकारी वकील रहे, मुन्सफी के लिए भी नामजद हुए, जज भी रहे। एक तरह से विदेशी सरकार के मातहत रहे। और कोई भी आदमी उनकी जिंदगी से यह सबक नही ले सकता कि वे देशभक्त भी रहे होगे। पर आइए हम आपको उनके दिल के उस कोने में ले चले जहाँ देशभक्ति की चिनगारी हरवक्त भभक उठने की कोशिश करती रहती थी। हम उनके दिलमें घुसे है। और उन्होने हमे वैसा करने दिया है। तभी तो हम आपको उनके दिलके कोने मे ले जाने की कोशिश कर रहे है। अगर अजितप्रसादजी देशभक्त न रहे होते और सच्चे मानों मे सरकार के गुलाम होते तो क्या अर्जुनलालजी सेठी फासी पाए वगैर रह सकते थे ? और क्या भाई मोतीलालजी जेलखाने की हवा खाए बगैर रह सकते थे ? और क्या दिल्ली के रा. ब. सुल्तानसिंह का कुनबा आफत मे पड़ने से बच सकता था ? भाई अजितप्रसादजी सरकारी नौकर रहते हुए भी देशभक्ति मे इतने सराबोर थे कि बहुत पास रहने वालो को भी वे वैसे नही दिखाई देते थे। यह किसे नही मालूम कि बहुत तेज रोशनी आंख नही देख सकती और बहुत जोर की आवाज कान नही सुन सकते। सन् १९१८ में जब पहली लड़ाई जोरो पर थी तब भाई अजितप्रसादजी ने लखनऊ मे एक सेवा-समिति की नीव डाली और उस समिति का जाल सारे शहर मे तेजी से फैल गया। सेवा-समिति के और कामों में से एक काम था रात को पहरा देना। इस पहरे से पुलिस को आराम था और गृहस्थियों को आम तौर पर और पत्नियों को खास तौर से खुशी थी। पर लखनऊ का डिप्टीकमिश्नर उस समिति में षड्यंत्र का वीज देख रहा था। और वह किसी हद तक सही था। पुलिस यो खुश थी कि उसे पहरा नही देना पड़ता था और इसमें शक नहीं कि जब तक यह समिति काम करती रही कोई चोरी हुई नही। गृहस्थी यो सुखी थे कि

उन्हें सुख की नीद आती थी। पत्नियां यो सुखी थी कि अव उनके पति न शराब पीनेकी हिम्मत कर सकते थे और न चकले की तरफ दौड़ सकते थे। क्यो कि पहरे पर रहने वाले मोहल्ले के आदमी थे और वे पूछताछ करते ही थे, इसलिए वे शर्म के मारे वैसी बुराइयाँ न कर पाते थे। सरकार की आखो में यह समिति यों खटकती थी कि वह समिति धीरे धीरे लखनऊ पर कब्जा करती मालूम होती थी और ऐसा साफ दिखाई दे रहा था कि वहुत जल्दी वैसी समितियाँ बनारस और इलाहाबाद में खड़ी हो जायंगी। हम उन दिनों भाई अजितप्रसादजी के मेहमान थे। पर एक दिन रात के दो बजे से चार वजे तक हम ने भी भाई अजितप्रसादजी के साथ मोहल्ले का गश्त किया था और समिति के काम को अपनी आँख से देखा था। समिति के बढ़ते हुए काम को देख कर डिप्टीकमिश्नर ने उसे इस बिना पर खत्म कर दिया कि समिति के सर्वेसर्वा भाई अजितप्रसादजी इस बात पर राजी नहीं हुए कि वह समिति पुलिस के अफसर या डिप्टी-कमिश्नर के यहाँ अपनी रजिस्ट्री कराए या किसी तरह भी सरकार से अपना सवंध रखे।

सेठी अर्जुनलालजी को जेल से छुड़ाने के लिए उन्होंने जी-तोड़ कोशिश की। पर सरकार भाई अजितप्रसादजी जैसे खतरनाक आदमी की वात कैसे सुन सकती थी।

भाई मोतीलालजी जो दिल्ली के मास्टर अमीचन्द्रजीकी वमपार्टी की पैसे से मदद किया करते थे, भाई अजितप्रसादजी की सलाह से ही आफत में पड़ने से बच सके। बात यह थी कि मास्टर अमीचंद जब पकड़े गए तो उनके कागजो से यह साबित हुआ कि भाई मोतीलालजी उनको पैसा देते थे। मगर इस बात का पता सरकार को उस वक्त चला जब मास्टर अमीचंद को फांसी का हुक्म हो चुका था। और उसी वक्त यह बात भाई मोतीलालजी तक पहुंच गई। बस, भाई अजितप्रसादजी ने फौरन मोती-लालजी से मास्टर अमीचंद के खिलाफ दीवानी अदालत में अपने कर्ज का दावा कर दिया। और जल्दी ही भाई मोतीलालजी को डिक्री मिल गई। भाई मोतीलालजी इस दावे की वजह से उन लोगों की नजरों में तो काफी

गिर गए जो ब्रम पार्टी के मेम्बर थे, पर जो भाई अजितप्रसादजी और भाई मोतीलालजी को पास से जानते थे उनकी नजरों में वे और ऊंचे उठ गए; क्योंकि उनको मालूम है कि उस डिक्री का पैसा कभी वसूल नहीं किया गया। वह तो सिर्फ सरकारी फंदे में फंसने से बचने की चाल थी।

अब हमारे पढ़नेवाले यह जान लेगें कि भाई अजितप्रसादजी कैसे सरकारी वकील थे और कितने सरकार के खैरख्वांह थे। भाई अजित-प्रसादजी जैसे समझदार आदमी और उस धर्म के अच्छे जानकार को जो कर्मों के बंधन और देह की गुलामी को भी बरदाश्त नहीं कर सकता वह धर्म देश की गुलामी बरदाश्त करने दे सकता था? भाई अजितप्रसादजी की देशभक्ति का जीवन एक अलग विषय है। इस प्रए यहाँ और ज्यादा चर्चा नही की जा सकती। बस इतना कहना काफी है कि भाई अजितप्रसादजी का घर उत्तरी-पश्चिमी षडयंत्रो का हमेशा अड्डा रहा है और वह सिर्फ सरकारी वकील होने के कारण ही किसी जाल में न फंस सके। और जो यह जानता है कि अर्जुनलालजी सेठी और भाई अजितप्रसादजी कितने एक जान दो तन थे उसे हमारी बात समझने में देर न लगेगी। और जो यह जानता है कि आरे के मामले में फासी जानेवाले मोतीचंद श्री. अर्जुनलाल सेठी के साथियो मे से एक थे, उसको तो हमारी बात समझने में जरा भी देर नही लगेगी। यह थी हमारे भाई अजितप्रसादजी की देश की आजादी की तड़प।

भाई अजितप्रसादजी को एम० ए० की डिग्री एक-दो हफ्ते से ज्यादह ज्ञान-मद के नशे में चूर न रख सकी और यही हाल कानून की डिग्री का हुआ। जिसका नतीजा यह हुआ कि ऊंचे से ऊंचा जज्र का ओहदा भी उनपर बोझ न हो सका। फिर थोड़ा-बहुत पैसा उन्हें अभिमान के भंवर में डालकर कैसे चकरा सकता था? वे हमारे साथ जब यात्रा में थे और जब हमारा सघ श्रवणबेलगोल पहुचा था और जब वहाँ गोमट स्वामी के अभिषेक के साथ साथ सन् १९१० में महासभा का जलसा था, उस समय भाई अजितप्रसादजी सरकार के काफी प्रतिष्ठित ओहदे पर थे और समाज मे भी उनकी काफी प्रतिष्ठा थी। पर यह सब प्रतिष्ठाएँ उनकी आत्मा को

जरा भी नही छू पाती थी। तभी तो उन्होंने हमारे यात्रा-संघ में बावड़ी से पानी भरकर लाने का काम अपने जिम्मे लिया था। यह तो यों ही हमने एक बात कह दी। उनकी सारी जिन्दगी, इसी तरह की सादगी से भरी हुई मिलेगी। वे टोप लगाते थे, पर टोपीया साहब बनकर किसी पर रौब जमाने के लिए नही, तेज धूप से बचने के लिए। तभी तो वे धोती पहनते थे और टोप लगाते थे। यह मामूली आत्मा का काम नही है कि धन, अधिकार और प्रतिष्ठा को इस तरह की समझी जाय मानो उसे यह तीनों मिले ही न हों। भाई अजितप्रसादजी मे अगर यह क्षमता न होती तो क्या वे लखनऊ शहर मे नगे पाव चलकर ब्र० शीतलप्रसादजी के लिए अपने हाथ से कुंए से पानी खींचकर ला सकते थे ?

भाई अजितप्रसादजी की कीर्ति—गाथा काफी लम्बी है। हम उसे इस वक्त लम्बाना नही चाहते। हम तो इस वक्त सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि वे हमारी दृष्टि मे अपने जीवन में पूरे सफल रहे। हां, उन्होंने अपने आपको कभी सफल नही माना। और वे मानते भी कैसे ? उनके न जाने क्या क्या इरादे थे ! और वे न जाने समाज को किस रूप मे देखना चाहते थे। उनमे से कोई भी बात तो पूरी न हुई। समाज भी यह कह सकता है कि वे असफल रहे, क्यो कि समाज तो उसीको सफल समझता है जो समाज मे मंदिर के कलश की तरह सब से ऊचा होकर सब पर चमके। समाज को इससे क्या मतलब कि वह यह सोचे और समझे कि कलश मे लगे सोने मे, वेश्या के गले मे पडे सोने मे, तिजोरी में रखे सोने में और खान में छुपे सोने में कोई अन्तर नही होता। अपने पाठको के साथ साथ हम भी यह मान लेते हैं कि सामाजिक दृष्टि से भाई अजितप्रसादजी उतने सफल नही हुए जितने समाज में दूसरे आदमी है या हो गए है। पर हम यह कहे बगैर न रहेंगे कि उनकी यह असफलता भी इतने ऊंचे दरजे की चीज है कि दसियों समझदारों के लिए ऐसी हो सकती है कि वे उसकी नकल करके अपने आपको धन्य समझे। बात सीधी सी है। वे समाज पैसे को उसी नजर से देखते थे जिस नजर से वे अपने पैसें को देखते थे। समाज में मशहूर होने की यह कला और समाज में सफल होने की यह

चालाकी उनको छू तक नही गई थी कि समाज में वही मशहूर हो सकता है जो समाजके पैसे को इस तरह वखेरे जिस तरह बच्चे धूल वखेरा करते है। वे समाज के एक एक पैसे का ठीक-ठीक हिसाव ही नही रखते थे इस वात का पूरा पूरा ध्यान रखते थे कि वह पैसा ठीक-ठीक खर्च हो। फिर वह असफल न होते तो क्या होते? सफल बनाने वाले भाटो तक जव उनके हाथसे समाज की या अपनी एक कौड़ी भी नही पहुच पाती थी तव उनके लिए कौन यह शोर मचाता कि वे अमुक काम में सफल हुए कि वे अमुक काम मे सफल हुए।

भाई अजितप्रसादजी की असफलता नामसे पुकारी जानेवाली सफलता हम पाठको की भेट करते है। उन्हे अगर भली लगे तो अपना ले, न भली लगे तो कमसे कम यह समझ तो ले कि भाई अजितप्रसादजी अपने जीवन मे असफल नही रहे, सफल ही रहे। और अगर असफल ही रहे तो प्रसिद्धि कमाने मे।

: २ :

अर्जुनलाल सेठी

अर्जुनलाल सेठीको लोगो ने भुला दिया। भुला देना हम वड़ा अच्छा काम समझते हैं। जो समाज अपने चाँदों, अपने सूर्यों को भुलाना नही जानता वह जीना नही जानता। पर चाँद और सूरजको भुलानेके लिए वड़ी अक्ल चाहिए, वड़ी हिम्मत चाहिए, वड़ा त्याग चाहिए और मर मिटने की तैयारी चाहिए। तुलसीने हिन्दी में रामायण लिखकर वाल्मीकि को भुला दिया, विनोवा ने मराठी में 'गीताई' नामसे गीता का अनुवाद करके मराठी जानकार जनताके दिलसे सस्कृत की गीता भुला दी। पर यह कौन नही जानता कि युग-युगमे नये-नये आदमी पैदा होकर पुराने आदमियो को भुलाते जाते है। क्या प० जवाहरलालने प० मोतीलाल नेहरू को लोगो के दिलो से नही भुलवा दिया? इस तरह भुलवाने जाने से वुजुर्गो की आत्मा नयो को आशीर्वाद देती है। पर समाजने अर्जुनलाल सेठी को इस तरह से कहाँ भुलाया? अगर इस तरह से भुलाया होता तो अर्जुनलाल सेठी की आत्मा आज हम सवको आशीर्वाद दे रही होती।

अर्जुनलाल सेठी समाज की ऐसी देन थे, जिन पर चाहे देश के थोडे ही आदमियो को अभिमान हो, पर उस अभिमान के साथ इतनी तीव्रता रहती है कि जो उस अभिमान मे नही रहती जो करोड़ों आदमियों मे विखरा होता है। यह किसको पता है कि देश के कितने ही मशहूर घरानो मे जव अर्जुनलाल सेठी की चर्चा चल पड़ती है तो सव के मुँह से यही निकल पड़ता है कि उस जैसे वात के पक्के आदमी को दुनिया वहुत कम पैदा करती है, और फिर सवके मुँहसे यही निकल पड़ता है कि होता कि हम भी अर्जुनलाल सेठी जैसे वन सकते।

अर्जुनलाल सेठी को हम आदमी कहे, या देश की आज़ादी का दीवाना कहे, हम अर्जुनलाल सेठी को हिन्दुस्तानी कहें, या आज़ादी के दीपक का परवाना कहें जो अपने २५ वर्ष के इकलौते बेटे को मौतके बिस्तर पर छोड़कर पं० सुन्दरलालके एक मामूली तार पर दौड़ा हुआ बम्बई पहुँचता है, पर बेटे के मर जाने के बाद भी उसे देश का काम छोड़ कर घर लौटने की जल्दी नहीं होती। कोई यह न समझे कि उसे घर से मोह नहीं था, उसे बेटे से प्यार नही था, वह इतना प्यारा था, और इतना मुहब्बती था कि उस जैसे पति के लिए पत्नियाँ तरस सकती है, उस जैसे बाप के लिए बेटे जानपर खेल सकते है, उस जैसे दोस्त के लिए दोस्त खून पसीना एक कर सकते हैं, उस जैसे नेता के लिए अनुयायी सरके बल चल सकते हैं।

अर्जुनलाल सेठी ने त्याग का व्रत नही लिया, त्याग किसी से सीखा नही, किसी नेता का व्याख्यान सुन कर जोश में आकर उस ने त्याग को नही अपनाया। त्याग तो वह मां के पेट से लाया था, त्याग तो उस के जन्म-घुट्टी में मिला था, त्याग को तो उसने मां के स्तन से पिया था, इसलिए त्याग करते हुए उसे त्याग का गीत नही गाना पड़ता था और त्यागी होते हुए दूसरो पर त्याग के घमण्ड का रोब नही जमाना पड़ता था। त्यागी का बाना पहनने की उसे जरूरत ही कहाँ थी? इन पक्तियो के पढ़नेवालो मे हो सकता है अनेकों ऐसे निकल आवे जो खुले नही तो मन ही मन यह कहने लगे कि रुपये तो हम से भी मगाए थे, पर यह वही बता सकते है जो उसके साथ रहे हो कि उसने उन रुपयो का क्या किया था। अर्जुन-लाल सेठी के त्याग की बाते ऐसी हैं जिन को आज भी हम साफ-साफ कहने के लिए तैयार नही। चूकि यह अच्छा ही है कि अभी वे कुछ दिनो और अजानकारीके गड्ढेमें पड़े रहे, पर हम अपने पढनेवालोको किसी दूसरी तरहसे समझाए देते है।

कलकत्ताके मशहूर देशभक्त श्री श्यामसुन्दर चक्रवर्ती जो कि चित्त-रंजनदासजीकी टक्करके आदमी थे उनसे मिलनेके लिए हम प० सुन्दर-लालजीके साथ कलकत्ता पहुंचे। श्यामसुन्दर चक्रवर्ती 'सर्वेंट' नामका एक

अग्रेजी दैनिक निकालते थे । हम वही उनसे उनके दफ्तरमें मिले । वे बड़ी मुहब्बतसे मिले और ऐसी खातिरदारी की मानो हम उनके माँ-जाये भाई हों । थोडी देर बाद वे हमे अपने घर ले गये और १६ वर्ष की लडकीको दिखाया जो वीमारीसे काटा हो गई थी और एकदम पीली पडी हुई थी । चक्रवती और लडकीकी मांसे बातों-बातोमे यह भी पता चला कि उम लडकीके लिए दवा और दूधका ठिकाना नही । तब हमने सोचा कि कुछ रुपये चक्रवर्तीको दे देने चाहिए । हम घरसे 'सर्वेंट' के दफ्तर लौट ही रहे थे कि रास्ते मे एक आदमीने चक्रवर्तीके नामका ५०० रु० का चेक दिया, चक्रवर्तीजी हमारे साथ उस चेकको लेकर पासके बेंकमे पहुँचे और ५०० रु० लिये। दफ्तरमे आये। पाँच मिनिटमें पूरे पाँच सौ खतम हो गये । 'सर्वेंट में काम करनेवालोकी २-३ महीनोकी तनख्वाह चढी हुई थी । चक्रवर्तीकी नजरमें पहले वह आदमी थे जो देशकी आजादीके काममे जुटे हुए है न कि वह बीमार लडकी जो पलंगपर पडी थी । हमने जब यह देखा तो यही मुनासिब समझा कि चक्रवर्तीके हाथमे दिये हुए रुपये तो न कभी दवाका रूप ले सकेंगे और न कभी दूध बन सकेंगे । इससे यही ठीक होगा कि दवा खरीद कर दी जाय और दूधका कोई इन्तजाम कर दिया जाय । अगर कुछ देना ही तो लडकीकी माँके हाथमें दिया जाय । हमने यह भी सोचा कि लड़कीकी मा हिन्दू नारी है और हिन्दू पत्नी है, वह पति देवतासे कैसे छिपाव रख सकेगी और फिर उसके पास भी वह रुपया कैसे बच सकेगा । आखिर ऐसा ही इतजाम करना पड़ा कि जिससे सब झंझटोसे बचकर रुपये दूध और दवामे तबदील हो सके ।

बस, इस ऊपरकी कथासे समझ लीजिए कि सेठीजीके हाथमें पहुँचा हुआ रुपया जाने कहाँ-कहाँ और किस तरह बिखर जाता था और किस तरह कम-ज्यादा देशकी आजादीके दीपकका तेल बनकर जल जाता था। सारी संस्थाएँ एक-एक आदमीके बलपर चलती है और वह आदमी इधर-उधरसे माँगकर ही रुपया लाता है पर जिनपर वह रुपया खर्च करता है उनपर सौ एहसान जमाता है । इतना ही नही, वह तो प्लेटफार्मसे चिल्ला-चिल्लाकर यह भी कहता है कि यह मै ही हूँ जो इन भूखोंका पेट भर रहा

हूँ। पर अर्जुनलाल सेठीने इस तरह भीख माँगकर पाये हुए रुपयेसे न कभी किसीपर एहसान जमाया और कभी प्लेटफार्मसे तो क्या कोनेकतरेमे भी अपने दानकी कोई वात नही कही। वह सच्चे मानोमे त्यागी था। उसने अपनेआपको कभी पैसे का मालिक नही समझा, पर समझा तो यह समझा कि वह पोस्टमैन है जो इधर से रुपया लाता है और उधर दे देता है। यहा हो सकता है कि कोई व्यवहार धर्म के रंग में बुरी तरह से भीगा यह सवाल उठा बैठे कि अर्जुनलाल सेठी भीख माँग कर ही नही पैसा इकट्ठा करते थे बल्कि इस तरह से भी रुपया जुटा लेते थे जिसे वह जानते थे कि यह रुपया ठीक तरह से हासिल नही किया गया। उसे हम क्या कहे, उसे दलीलो से समझाना किसी तरह से नही हो सकता। उसे तो हम यही कहेगे कि वह एक मर्तबा अपने भीतर आजादी की आग सुलगाये और देखे कि उस आग की जव लपटे उठती है तो वह क्या करता है और व्यवहार धर्म को कैसे निभाता है। अर्जुनलाल सेठी को निश्चय और व्यवहार धर्म के दोनों रूपो की जानकारी बहुत काफी थी और इस नाते वह पडित नाम से पुकारे जाते थे। पर वह कोरे पडित नही थे। कोई दिन ऐसा नही जाता जिस दिन वह रात को बैठ कर अपने दिन भर के काम का अकेले मे पर्यालोचन नही कर जाते थे। उन्होने तो कभी अपने मुँह से नही कहा पर उनके पास रहकर हमारा यह अनुभव है कि उनका जीवन सचमुच जल मे कमल की तरह था।

जयपुर कालेज से वी० ए० करने के वाद उनके लिए रियासत में नौकरी का मार्ग खुला हुआ था, उनके साथियो और करीवी रिश्तेदारो में से कई उस रास्ते को अपना चुके थे। पर ये कैसे अपनाते, इन्हे नौकरी से क्या लेना था, इन्हें तो उसी राज्यके जेलखानेका मेहमान वनना था।

वी० ए० इन्होंने फारसी लेकर किया था और सस्कृत घरपर सीखी थी। धर्मशिक्षा के मामले मे वे चिमनलाल वक्ता को अपना गुरु मानते थे, हमने वक्ताजी के व्याख्यान सुने है। श्रोताओ को समझाने की शैली उनकी वड़ी सीधी होती थी और इतनी मन लगती होती थी कि असली वात झट समझ मे आ जाती थी। ऐसे गुरुके शिष्य अर्जुनलालजी अगर कुछ ऐसी वातें

कह गये जो बहुतों को मन लगती नही जँचती तो उसमें उनका क्या दोष! वे तो सचाई के साथ खोज मे लगे और जो हाथ आया कह गये।

वह भरी जवानी में समाज-सेवा के मैदान में कूद पड़े और सबसे पहले उन्होंने वह काम उठाया जिसकी समाज को सबसे ज्यादा जरूरत थी यानी उन्होंने एक शिक्षासमिति की नींव डाली, उसीके मातहत जयपुर में पाठशालाओ का जाल बिछा दिया। अबुलगफूर नामके विद्यार्थी को लेकर समाज में बड़ी खलबली मची, पर समाज पैदायशी त्यागी अर्जुनलाल का क्या बिगाड़ सकती थी और फिर उन्हें एक साथी घीसूलाल गोलेच्छा ऐसे मिल गये थे जिसकी दोस्तीने सेठीजी के त्यागको और भी ज्यादा मजबूत कर दिया था।

यह शिक्षासमिति कुछ दिनो मे एक छोटी-मोटी यूनिवर्सिटी का रूप ले बैठी और दूर दूर के विद्यार्थी उसकी परीक्षा मे शामिल होने लगे।

शिक्षाकी सड़क जिस रास्ते होकर गई है उस रास्ते मे दासता से मुठभेड़ हुए बगैर नही रहती और कैसी भी शिक्षासमिति क्यो न हो दासताकी बेड़ियों मे फँसकर वह सच्चे धर्म की तालीम नही दे सकती। उनका सच्चा धर्म और स्वाधीनता एकार्थवाची शब्द है इसलिए उसको राज से टक्कर ही नही लेनी पडती बल्कि उसे उखाड फेंकनेकी तैयारी करनी होती। सेठीजीकी शिक्षासमिति आखिर उस मजिलपर पहुँच ही गई और वह सरकार से टक्कर ले ले कि इन्दौर मे श्री कल्याणमलविद्यालय के प्रधानाध्यापककी हैसियत से गिरफ्तार कर लिये गये और कुछ दिनों जयपुर जेल मे और कुछ दिनों बैलोर जेल में रहने के बाद बाहर निकले कि जल्दी ही सन् २१ के आन्दोलन मे शामिल हुए। पैदायशी त्यागी के लिए और राह ही क्या थी।

हम से उमर में वह दो वर्ष बडे थे और हमारी उन से जब जान-पहचान हुई तब वह हम से कई गुने ज्यादह धर्म के ज्ञाता थे और कहकर ही नही, तो मन ही मन हम उनको धर्म के मामले मे गुरु ही मानते थे और हम उनकी बहुत सी बातो की नकल करने की कोशिश करते थे। जब वह शिक्षाप्रचारक समिति के काम में लगे हुए थे तब शिष्टाचार के वह आदर्श

थे। गाली तो उनके मुंहपर फटकने की सोच ही नही सकती थी। मामूली पाजी या नालायक़ शब्द भी उन के मुंह से निकलते हमने कभी नही सुना, वह अध्यापक भी थे पर विद्यार्थियोंपर कभी नाराज नहीं होते थे। विद्यार्थियो से 'आप' कहकर बोलना हमने उन्हीं से सीखा। यह तारीफ सुनकर भी हमारे पढनेवाले एकदम ऐंठ जायें क्योंकि उनमें से बहुतोंने उनको गाली देते सुना होगा। और बुरी-बुरी गालियाँ देते हुए भी सुना होगा। हम उनकी बातोको झुठलाना नहीं चाहते पर हम तो अर्जुनलाल सेठी के बहुत पास रहे है और मुद्दतों रहे हैं। यह गाली देने की बला उन के पीछे 'वैलोर' जेल से लगी जहाँ वह वर्षो राजकाजी कैदी की हैसियत से रहे हैं। वहाँ वे इतने सताये गये थे कि 'वैलोर' जेल से निकलने के बाद उनके वारे में यह कहना कि वह अपने होशहवास में थे जरा मुश्किल हो जाता है। जेल से छूटकर वह देहली गये तब हम वहाँ उन से मिले थे, वे अनेको काम ऐसे करते थे कि जो इस शिष्टाचार से जरा भी मेल नही खाता था जिसको हमने जयपुर में देखा। उदाहरण के लिए हर औरत के पाँव छूने और जगह वेजगह यह कह वैठना कि मैंने भगवान्‌की मूरतका मेहतरों से प्रक्षाल करवाया। उन दिनों सारी बातें कुछ इस तरह की होती थी कि यह नही समझा जा सकता था कि उनको होश-हवास थी। धीरे-धीरे उन्होने अपनेपर काबू पाया, पर गालियोपर इस वजह से पूरा-पूरा क़ाबू नही पा सके कि कांग्रेस की राजकारी चपेटोने उनका मरते दमतक कभी पीछा न छोडा।

निश्चय के वलपर व्यवहार में वह कभी-कभी इतने पीछे पड जाते थे और वह कभी-कभी इतने आगे बढ जाते थे कि आम आदमी उन दोनो का मेल नही बिठा पाते थे। इस वास्ते कभी-कभी किसी-किसी समझदार के मुहसे तग आकर यह निकल पडता था कि अर्जुनलाल योगभ्रष्ट हो गया है। हम उनसे हर हालत में मिलते रहे। उस हालत मे भी मिले जव उन्हें योगभ्रष्ट की पदवी मिली हुई थी पर हमने तो उनमे कोई अन्तर पाया नही। उनकी आजादी की लगन ज्यो की त्यो बनी हुई थी, उनका सर्वधर्म समभाव ज्यो का त्यो था और उनकी आजादी की तडप मे कोई अन्तर नही आया।

हम तो उसीको धर्म की चोटीपर पहुँचा हुआ मानते है जो जिस धर्म मे पैदा हुआ हो, उस धर्म के आम लोग उसे धर्मभ्रष्ट समझने लगे और उससे खूब घृणा करने लगे और बन सके तो उन्ही आम लोगो में से कोई ऐसा भी निकल आवे जो उस धर्मभ्रष्ट को मौत के घाट उतार दे। और क्या गाधीजी कुछकी नजर मे धर्मभ्रष्ट नही थे और क्या उन्हें धर्मभ्रष्ट होने की सजा नहीं मिली ? इस लिहाज से तो सेठीजी अच्छे ही रहे। फिर वे धर्मभ्रष्ट तो रहे पर सजासे बच गये।

अर्जुनलाल सेठी का जीवन सचमुच जीवन है। यह भी कोई जीवन है कि बनी बनाई पक्की सड़को पर दौड़े हुए चले जाँय। सेठीजी का जीवन कभी पहाडी की चोटियो को लाँघता और कभी चक्करदार रास्तो मे घूमता, घने जगल में पगडडी की परवाह किये बिना जिधर चाहे उधर चल पडता। ऐसा करने के लिए नामवरी को अपने पाँवो के नीचे कुचलने के लिए जितनी हिम्मत चाहिए, उतनी उन में थी और यही तो एक ऐसी चीज थी कि जिस की वजह से हमको सेठीजी के जीवन से स्पर्द्धा होती है।

तो क्या सेठीजी में कोई कमी या बुराई नही थी ? हाँ बेहद कमियाँ और बुराइयाँ थी। अगर गुलाब के फूल की झाडी के काँटे गुलाब की बुराइयाँ है तो वैसी उनमे अनगिनत बुराइयाँ थी। और गुलाब की फूल की झाड़ी के वह सूखे पत्ते जो पीले पड़ जाते हैं, कमियाँ है तो उनमे अनेको कमियाँ थी। अगर गुलाब की टेढी-मेढी बेढंगी, बदसूरत जड़ें गुलाब की कमियाँ है, गुलाब की बुराइयाँ है तो ये सब उनमे थी। पर हम करें तो क्या करे, हमारी नजर तो गुलाब पर है और हम उस गुलाब पर इतने मस्त है कि उसे तोडते हुए हमारे सैकड़ों काँटे भी लग जायें तो अपनी मस्ती मे उस ओर हमारा ध्यान ही नही जाता। हम सेठीजी की उस लगन को देखे जिसको लेकर वह पहले धर्म के मैदान मे कूदे, फिर समाज के मैदान मे आये और फिर देश के मैदान मे आये, या हम यह देखें कि वे क्या खाना खाते थे, किस तरह की टोपी लगाते थे या वे उस मकान में सोते थे जिसका पश्चिम की तरफ दरवाजा था, उस मकान में रहते थे जिसका पूरब की तरफ दरवाजा था, जो काँटो का ही रोना रोते हैं जो न

फूल पाना चाहते है और न फूल पाने की इच्छा रखते है। हम इसे मूर्खता ही समझते है कि फूल सूखकर जब उसकी पंखुडियाँ गिरे तब इस आधार पर फूल के बारेमे हम अपनी राय बनाएँ कि उसकी पखुड़ियाँ जगल में गिरी थी, या किसी साधु की कुटी मे गिरी थी, या मंदिर में किसी देवता की वेदीपर गिरी थी, या राजा के महल मे गिरी थी। आदमी के मरने के बाद उस लाश को चील, गृद्ध खाएँ तो वही बात, जलाई जाय तो वही बात, दफ़नाइ जाय तो वही बात और बहाई जाय तो वही बात।

एक शोर है कि सेठीजी दफनाये गए और साथ मे यह भी शोर है कि उनके दफनाये जानेकी जगह का ठीक पता नही है। अगर पिछली बात ठीक है तो बडे काम की बात हैं क्योकि इस तरह मरने के बाद नाम न छोडकर दफनाये जाने से किसी दिन तो उन हड्डियो पर हल चलेगा और वहाँ खेती होगी और उससे जो दाने उगेगे उसे जो खाएगा उसमें कुछ देश-भक्ति आये बगैर न रहेगी। सेठीजी को जो मौत मिली वैसी मौत के लिए दिल्ली के मशहूर कवि गालिब तक तरसते गये—

"रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हमसखुन कोई न हो, और हमजुबाँ कोई न हो॥
बेदरोदीवार-सा इक घर बनाना चाहिये।
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो।
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइए तो नौहाख्वाँ कोई न हो।

: ३ :

गुरु गोपालदास

प. गोपालदासजी वरैयापर लेख लिखने से पहले हम यह कहना चाहेंगे कि हमने उन जैसा दूसरा आदमी समाज में आज तक नहीं देखा। पर यह बात तो हर आदमी के लिए कही जा सकती है। नीम के पेड़ के लाखो पत्तो में कोई दो पत्ते एक से नही होते, पर सब हरे और नुकीले तो होते है। समाज के हर आदमी से यह आशा की जाती है कि वह कम से कम अपने समाज के मेम्बरो को सताये नही, उनसे झूठा व्यवहार न करे, उनके साथ ऐसे काम न करे जिनकी गिनती चोरी में होती है। समाज मे रहकर अपनी लंगोटी और अपने आँख के बाँकपनपर पूरी निगाह रखे और अपनी ममता की हद बाँधकर रहे। इन पाँच बातों में, जिन्हे अणुव्रत यानी छोटे व्रत के नाम से पुकारा है, वे पूरे पूरे पक्के थे, और पाँचो अणुव्रतों को ठीक-ठीक निभानेवाला समाज में हमारे देखने में कोई दूसरा आदमी नही मिला। वह पूरे गृहस्थ थे, दूकानदारी भी करते थे, और पंडित और विद्वान् होने के नाते जगह-जगह व्याख्यान देने भी जाते थे और इस नाते आने-जाने का किराया और खर्च भी लेते थे, पर दूकानदारी और इन सब बातो मे जितनी सचाई वह बरतते थे, और किसी दूसरे को बरतते हुए नही देखा है। अगर उन्हे कोई ५० रु० पेशगी भेज दे और घर पहुँचते-पहुँचते उनके पास १० रु० बचे तो वह १० रु० वापिस कर देते थे और दो पैसे बच रहे तो दो पैसे भी वापिस कर देते थे। वह हर तरह से हिसाब के मामले में पैसे-पैसे का ठीक-ठीक हिसाब रखते थे। पाँचो व्रतोमें से हर व्रत का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे और इन व्रतो के प्रति सचाई ही उनमे एक ऐसा जादू बनी हुई थी, जिस से सभी उनकी तरफ़ खिचते थे।

धर्म के मामले मे आम तौर से लोग अणुव्रतोमे से किसी व्रत की परवाह नही करते और सचाई के अणुव्रतकी तो बिल्कुल ही परवाह नही

ते थे। एक पण्डितजी ही थे जो धर्म और व्यवहार में कहीं भी सचाई हाथ से नही खोते थे। तभी तो वह उन पंडितों की नजर मे गिर गए धर्म के ज्ञाता थे, पर उसपर अमल करने के अभ्यासी नही थे।

पण्डितजी अणुव्रती थे पर साथ ही साथ परीक्षा प्रधानता में पूरा श्वास रखते थे, और जैसे-जैसे वह परीक्षा-प्रधानता को समझते जाते थे, -वैसे उसपर अमल करते जाते थे। दूसरे शब्दों में वह धीरे-धीरे ीक्षा-प्रधानी बनते जा रहे थे कि मौत उन्हें उठाकर ले गई। कोई मन-ग यह सवाल उठा सकता है कि क्या वह शुरू-शुरू में परीक्षाप्रधानी ी थे ? हम उसे जवाब देंगे–हाँ, वह नही थे। वह शुरू-शुरू मे अन्ध-द्धानी थे, कोरे कट्टर दिगम्बरी थे। उनकी कट्टरता दिनोंदिन कम होती रही थी और अगर वह जीते रहते तो वह कट्टरता खतम हो जाती र फिर वह दिगम्बरी न रहकर जैन बन जाते और अगर कुछ और उमर ते तो सर्व धर्म-समभावी होकर इस दुनिया से कूच करते।

हम ऊपर के पैरे में बहुत बडी बात कह गये है, पर वह छोटे मुँह ड़ी बात नही है। हमने पं०जीको बहुत पास से देखा है। पं०जी हमको हुत प्यार करते थे और जब भी हम उनसे मिले, उन्होंने पूरी एक रात मसे बिल्कुल जी खोलकर बाते कीं और हमारी बाते खुले दिल से सुनीं। म से जब वह बात करते थे तो एकदम अभिन्न हो जाते थे। हम यह सब हकर भी यह नही कहना चाहते कि उन्होने हमसे कबूला कि वह कट्टर दगम्बरी थे। इस तरह बेतुकी बात हम क्यो पूछने लगे और वह हमसे यो कहने लगे ? हम तो ऊपर की बात सिर्फ इसलिए लिख रहे है कि हमने उन्हे पाससे देखा है और उनका खुला हुआ दिल देखा है। बस उस नाते और सिर्फ उस नाते हम यह कहना चाहते है कि हम जो कुछ ऊपर कह आये है, वह वह है कि जो हमने नतीजा निकाला है।

हमने यह नतीजा कैसे निकाला यह बताने से पहले हम यह कह देना चाहते है कि जो आदमी परीक्षा प्रधानी बनने जा रहा है, वह किसी धर्म या पन्थ का कितना ही कट्टर अनुयायी क्यों न हो, उस आदमी से लाख दरजे अच्छा है जो अन्धश्रद्धानी होते हुए सर्व धर्म समभावी होने का दावा

हम तो उसीको धर्म की चोटीपर पहुँचा हुआ मानते है जो जिस धर्म मे पैदा हुआ हो, उस धर्म के आम लोग उसे धर्मभ्रष्ट समझने लगे और उससे खूब घृणा करने लगे और वन सके तो उन्ही आम लोगो में से कोई ऐसा भी निकल आवे जो उस धर्मभ्रष्ट को मौत के घाट उतार दे। और क्या गांधीजी कुछकी नजर मे धर्मभ्रष्ट नही थे और क्या उन्हे धर्मभ्रष्ट होने की सजा नही मिली ? इस लिहाज से तो सेठीजी अच्छे ही रहे। फिर वे धर्मभ्रष्ट तो रहे पर सजासे बच गये।

अर्जुनलाल सेठी का जीवन सचमुच जीवन है। यह भी कोई जीवन है कि बनी बनाई पक्की सडको पर दौड़े हुए चले जाँय। सेठीजी का जीवन कभी पहाड़ो की चोटियो को लाँघता और कभी चक्करदार रास्तो मे घूमता, घने जगल मे पगडडी की परवाह किये बिना जिधर चाहे उधर चल पड़ता। ऐसा करने के लिए नामवरी को अपने पाँवों के नीचे कुचलने के लिए जितनी हिम्मत चाहिए, उतनी उन में थी और यही तो एक ऐसी चीज थी कि जिस की वजह से हमको सेठीजी के जीवन से स्पर्द्धा होती है।

तो क्या सेठीजी मे कोई कमी या बुराई नही थी ? हाँ बेहद कमियाँ और बुराइयाँ थी। अगर गुलाब के फूल की झाडी के काँटे गुलाब की बुराइयाँ है तो वैसी उनमे अनगिनत बुराइयाँ थी। और गुलाब की फूल की झाडी के वह सूखे पत्ते जो पीले पड जाते है, कमियाँ हैं तो उनमें अनेको कमियाँ थी। अगर गुलाब की टेढी-मेढी बेढंगी, बदसूरत जडें गुलाब की कमियाँ है, गुलाब की बुराइयाँ है तो ये सब उनमे थी। पर हम करे तो क्या करे, हमारी नजर तो गुलाब पर है और हम उस गुलाब पर इतने मस्त है कि उसे तोड़ते हुए हमारे सैकड़ो काँटे भी लग जाये तो अपनी मस्ती मे उस ओर हमारा ध्यान ही नही जाता। हम सेठीजी की उस लगन को देखे जिसको लेकर वह पहले धर्म के मैदान मे कूदे, फिर समाज के मैदान मे आये और फिर देश के मैदान में आये, या हम यह देखे कि वे क्या खाना खाते थे, किस तरह की टोपी लगाते थे या वे उस मकान में सोते थे जिसका पश्चिम की तरफ दरवाजा था, उस मकान मे रहते थे जिसका पूरब की तरफ दरवाजा था, जो काँटो का ही रोना रोते है जो न

फूल पाना चाहते है और न फूल पाने की इच्छा रखते हैं। हम इसे मूर्खता ही समझते है कि फूल सूखकर जब उसकी पंखुडियाँ गिरे तब इस आधार पर फूल के बारेमें हम अपनी राय बनाएँ कि उसकी पखुड़ियाँ जगल में गिरी थी, या किसी साधु की कुटी में गिरी थी, या मंदिर मे किसी देवता की वेदीपर गिरी थी, या राजा के महल में गिरी थी। आदमी के मरने के बाद उस लाश को चील, गृद्ध खाएँ तो वही बात, जलाई जाय तो वही बात, दफ़नाइ जाय तो वही बात और वहाई जाय तो वही बात।

एक शोर है कि सेठीजी दफनाये गए और साथ मे यह भी शोर है कि उनके दफनाये जानेकी जगह का ठीक पता नही है। अगर पिछली बात ठीक है तो बडे काम की बात है क्योंकि इस तरह मरने के वाद नाम न छोडकर दफनाये जाने से किसी दिन तो उन हड्डियों पर हल चलेगा और वहाँ खेती होगी और उससे जो दाने उगेंगे उसे जो खाएगा उसमें कुछ देश-भक्ति आये वगैर न रहेगी। सेठीजी को जो मौत मिली वैसी मौत के लिए दिल्ली के मशहूर कवि गालिब तक तरसते गये—

"रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हमसख़ुन कोई न हो, और हमजुबाँ कोई न हो॥
वेदरोदीवार-सा इक घर बनाना चाहिये।
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो।
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइए तो नौहाख्वाँ कोई न हो।

: ३ :

गुरु गोपालदास

पं. गोपालदासजी वरैयापर लेख लिखने से पहले हम यह कहना चाहेगे कि हमने उन जैसा दूसरा आदमी समाज में आज तक नहीं देखा। पर यह वात तो हर आदमी के लिए कही जा सकती है। नीम के पेड़ के लाखो पत्तों में कोई दो पत्ते एक से नही होते, पर सब हरे और नुकीले तो होते है। समाज के हर आदमी से यह आशा की जाती है कि वह कम से कम अपने समाज के मेम्वरो को सताये नही, उनसे झूठा व्यवहार न करे, उनके साथ ऐसे काम न करे जिनकी गिनती चोरी में होती है। समाज में रहकर अपनी लंगोटी और अपने आँख के वाँकपनपर पूरी निगाह रखे और अपनी ममता की हद वाँधकर रहे। इन पाँच बातो में, जिन्हे अणुव्रत यानी छोटे व्रत के नाम से पुकारा है, वे पूरे पूरे पक्के थे, और पाँचों अणुव्रतो को ठीक-ठीक निभानेवाला समाज में हमारे देखने में कोई दूसरा आदमी नही मिला। वह पूरे गृहस्थ थे, दूकानदारी भी करते थे, और पंडित और विद्वान् होने के नाते जगह-जगह व्याख्यान देने भी जाते थे और इस नाते आने-जाने का किराया और खर्च भी लेते थे, पर दूकानदारी और इन सव वातो में जितनी सचाई वह वरतते थे, और किसी दूसरे को वरतते हुए नही देखा हैं। अगर उन्हे कोई ५० रु० पेशगी भेज दे और घर पहुँचते-पहुँचते उनके पास १० रु० वचे तो वह १० रु० वापिस कर देते थे और दो पैसे वच रहे तो दो पैसे भी वापिस कर देते थे। वह हर तरह से हिसाव के मामले में पैसे-पैसे का ठीक-ठीक हिसाव रखते थे। पाँचो व्रतोंमें से हर व्रत का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे और इन व्रतो के प्रति सचाई ही उनमे एक ऐसा जादू वनी हुई थी, जिस से सभी उनकी तरफ खिचते थे।

धर्म के मामले मे आम तौर से लोग अणुव्रतोमे से किसी व्रत की परवाह नही करते और सचाई के अणुव्रतकी तो विल्कुल ही परवाह नही

करते थे। एक पण्डितजी ही थे जो धर्म और व्यवहार में कही भी सचाई को हाथ से नही खोते थे। तभी तो वह उन पडितों की नजर में गिर गए जो धर्म के ज्ञाता थे, पर उसपर अमल करने के अभ्यासी नही थे।

पण्डितजी अणुव्रती थे पर साथ ही साथ परीक्षा प्रधानता में पूरा विश्वास रखते थे, और जैसे-जैसे वह परीक्षा-प्रधानता को समझते जाते थे, वैसे-वैसे उसपर अमल करते जाते थे। दूसरे शब्दों में वह धीरे-धीरे परीक्षा-प्रधानी बनते जा रहे थे कि मौत उन्हे उठाकर ले गई। कोई मन-चला यह सवाल उठा सकता है कि क्या वह शुरू-शुरू में परीक्षाप्रधानी नही थे? हम उसे जवाब देंगे—हाँ, वह नही थे। वह शुरू-शुरू मे अन्ध-श्रद्धानी थे, कोरे कट्टर दिगम्बरी थे। उनकी कट्टरता दिनोंदिन कम होती जा रही थी और अगर वह जीते रहते तो वह कट्टरता खतम हो जाती और फिर वह दिगम्बरी न रहकर जैन बन जाते और अगर कुछ और उमर पाते तो सर्व धर्म-समभावी होकर इस दुनिया से कूच करते।

हम ऊपर के पैरे में बहुत बडी बात कह गये है, पर वह छोटे मुँह बड़ी बात नही है। हमने पं०जीको बहुत पास से देखा है। पं०जी हमको बहुत प्यार करते थे और जब भी हम उनसे मिले, उन्होंने पूरी एक रात हमसे बिल्कुल जी खोलकर बाते कीं और हमारी बाते खुले दिल से सुनी। हम से जब वह बात करते थे तो एकदम अभिन्न हो जाते थे। हम यह सब कहकर भी यह नही कहना चाहते कि उन्होंने हमसे कबूला कि वह कट्टर दिगम्बरी थे। इस तरह बेतुकी बात हम क्यों पूछने लगे और वह हमसे क्यो कहने लगे? हम तो ऊपर की बात सिर्फ इसलिए लिख रहे है कि हमने उन्हें पाससे देखा है और उनका खुला हुआ दिल देखा है। बस उस नाते और सिर्फ उस नाते हम यह कहना चाहते हैं कि हम जो कुछ ऊपर कह आये है, वह वह है कि जो हमने नतीजा निकाला है।

हमने यह नतीजा कैसे निकाला यह बताने से पहले हम यह कह देना चाहते हैं कि जो आदमी परीक्षा प्रधानी बनने जा रहा है, वह किसी धर्म या पन्थ का कितना ही कट्टर अनुयायी क्यों न हो, उस आदमी से लाख दरजे अच्छा है जो अन्धश्रद्धानी होते हुए सर्व धर्म समभावी होने का दावा

करता है। वह तो सर्वधर्म समभाव का नाटक खेलता है या ढोंग रचता है। प० जी ने कभी किसी चीज़ का नाटक नही खेला, वह जब जो कुछ थे, सच्चे जी से थे और सचाई ही तो पूज्य है, वही तो धर्म है, वही तो अंधेरे से उजाले की तरफ़ ले जाने वाली चीज़ है और वह पडितजी में थी। इस सचाई के बलपर ही वह झट ताड जाते थे कि मै अबतक कौन-सा नाटक खेलता रहा हूँ। और कौन-सा ढोंग रचता रहा हूँ। अपनी परीक्षा मे जैसे ही उन्होने नाटक को नाटक और ढोंग को ढोंग समझा कि उसे छोड़ा। जैसे ही उन्होने परीक्षा से यह जाना कि सोमदेवकृत त्रि–'वर्णाचार' आर्ष ग्रन्थ नही है, वैसे ही उन्होने उनको अलग किया और उसके आधार पर जो पूजा की क्रियाएँ करते थे, उन्हे धता बताई। धता बताई शब्द ज़रा भी हम बढकर नही कह रहे है, उन्होने इससे ज्यादा कड़ा शब्द इस्तेमाल किया था।

धर्म के मामले मे उनकी कही हुई खरी-खरी बातें आज बच्चे-बच्चे की ज़बान पर है, उन्हे हम दुहराना नही चाहते। हम तो यहाँ सिर्फ इतना ही कहेंगे कि प० गोपालदासजी बरैया सचाई के साथ विचारस्वाधीनता का दरवाज़ा खोल गये और आज जो स्वामी सत्यभक्त के रूप में पं० दरबारीलालजी स्वाधीन विचारो का चमत्कार दिखा रहे है, वह उसी द्वारसे होकर आये है, जिसका दरवाजा प० जी हिम्मत करके खोल गये थे।

पं० जीने सम्यक्त्व, देवता, कल्पवृक्ष, केवलज्ञान, मुक्ति इनके बारे में ऐसी-ऐसी बातें कही, जिनसे एक मर्तबा समाज मे खलबली मची, पर वैसा तो होना ही था। कुछ दिनों पं० जीकी हँसी उड़ाई गई, फिर जोर का विरोध किया गया, फिर सहन किया गया और फिर मान लिया गया।

पं० जीने क्या-क्या काम किये इनको गिनाकर हम क्या करे, यह काम मुरेना महाविद्यालय का है और अगर हम भूलते नही है तो शायद वहाँ से उनकी जीवनी निकल चुकी है, जो ज्यादा जानना चाहे वे वहाँ से जान लें। हम तो सिर्फ वे ही बाते लिखना चाहते है, जिनका हमारे दिल पर असर है। पं० जीको जो संगिनी मिली थी वह उन्हीके योग्य थी। उनकी

संगिनी उनके अणुव्रतो की परीक्षा की कसौटी थी, पर प० जी उस कसौटी पर हमेशा सौटच सोना ही साबित हुए। उनकी सगिनी के स्वभाव के बारे में हमने सुना ही सुना है, पर वह सुना ऐसा नही है कि जिसपर विश्वास न किया जाय। हमारा देखा हुआ कुछ भी नही है, कोई यह न समझे कि हम ऐसी बात कह कर पूर्वापर विरोध कर रहे हैं। चूंकि अभी तो हम कह आये है कि हमने प० जी को पासमे देखा है और जब पास से देखा है तो क्या सगिनी को नही देखा था; हाँ- देखा था पर हमने कभी उनको ऐसे रूप मे नही देखा जैसा सुन रक्खा था, और इसके लिए तो हम एक घटना लिखे ही देते हैं।

इटावा मे 'तत्त्व प्रकाशिनी' सभा का जलसा था। पं० जी अपनी संगिनी समेत वहाँ आये हुए थे। उनकी सगिनी उस वक्त प्रेमीजी के लड़के को जो उस वक्त वर्ष या डेढ वर्ष का होगा, गोद मे खिला रही थीं। वह लड़का उनकी गोद में बुरी तरह रो रहा था, हम उस वक्त तक उन को पं. जीकी सगिनी की हैसियत से नही जानते थे। इसलिए हमने उनकी गोद से उस लडके को छीन लिया। और सचमुच छीन लिया, ले लिया नही। छीन लिया हम यो कह रहे हैं कि हमने उस बच्चे को लेते वक्त कहा तो कुछ नही, पर लेने के तरीके से यह बताया कि हम यह कह रहे हैं कि तुम्हे बच्चा खिलाना नही आता और होनहार की बात कि वह बच्चा हमारी गोद मे आकर चुप हो गया। यह सब कुछ प्रेमीजी खडे-खड़े देख रहे थे। वह थोड़ी देर में चुपके-से हमारे पास आकर बोले कि आप बडे भाग्यशाली हैं। मैंने पूछा—क्यो ? बोले आपने पडितानी जीसे बच्चा छीन लिया और आपको एक शब्द भी सुनने को नही मिला। हम तो उस वक्त न जाने क्या-क्या अंदाजा लगा रहे थे।

उस दिन के बाद हम जब भी प० जीसे मिले, हमने तो उनको इसी स्वभाव में पाया। यही वजह है कि हम उनके स्वभाव के बारे में जो कुछ कह रहे हैं वह सब सुनी सुनाई बात है।

कुछ भी सही, हाँ तो उनकी संगिनी उनके अणुव्रत की कसौटी थी और उन्होने जीवनभर उनका साथ ऐसा निभाया कि जो एक अणुव्रती ही निभा सकता था।

पं० जीने जीते जी दूसरी प्रतिमा से आगे वढ़ने की कोशिश नही की, लेकिन एक से ज्यादा ब्रम्हचारियों को हमने उनके पाँव छूते देखा, वह सचमुच इस योग्य थे।

आज जो तत्त्व-चर्चा घर-घर मे फैली हुई है और ऐसी वन गई है मानो वह माँके पेट से ही साथ साथ आती हो, यह सव प० जी की मेहनत का ही फल है। वह गहरी-से-गहरी चर्चा को इतनी आसान वना देते थे कि एक वार तो तत्त्वो का विल्कुल अजानकार भी ठीक-ठीक समझ जाता था। यह दूसरी वात है कि अपनी अजानकारी के कारण वह उसे ज्यादा देर के लिए याद न रख सके। इसलिए उन्होने "जैन सिद्धान्त प्रवेशिका" नाम की एक किताव लिख डाली थी, उसे आप जैन सिद्धान्त का जेवीकोश यानी पाकेट डिक्शनरी कह सकते है।

पं० जी की जीवनी की बाते तो अनेकों है, उन्हें लिखकर हम क्या करे, हम तो यह लिखकर अपना कहना खत्म कत्म करते है कि उनकी जीवनी ऐसी थी, जिससे कुछ सीख ली जा सकती है और उसका निचोड़ हम यह समझें :—

१. सच्चे या अणुव्रती वनना है तो निर्भीक वनो।

२. निर्भीक वनना है तो किसी की नौकरी मत करो, अपना कोई रोजगार करो।

३. रोजगार करते हुए अगर धर्म या धर्म चर्चा के वक्ता वनना चाहते हो तो अणुव्रत का ठीक-ठीक पालन करो, तभी दुकान चल सकेगी।

४. अणुव्रत को अगर ठीक-ठीक पालन करना है तो अपनी हद वाँधो।

५. अपनी हद बाँधनी है तो किसी कर्तव्य से वँधो।

६. कर्त्तव्य को ही अधिकार मानो।

७. अधिकारी वनो, अधिकार के लिए मत रोओ।

: ४ :

बाल जैनेन्द्र

जैनेन्द्रकुमार के बालकपन पर कुछ लिखना बिल्कुल अधूरा रह जायेगा, अगर उनके माँ-बाप को बिल्कुल प्रकाश में न लाया जाय। मेरा तो यह ख्याल है कि उनको जितना प्रकाश में लाया जायगा, उतना ही जैनेन्द्रकुमार को समझने में आसानी होगी। पर यहाँ तो हम उनका उतना ही परिचय देंगे जिसकी यहां जरूरत है।

जैनेन्द्रकुमार की माता का जन्म खाते-पीते घराने मे हुआ था। और अगर उन दिनो लड़कियों की तालीम या ऊंची तालीम बुरी नजर से न देखी जाती होती, तो वे उस योग्य जरूर थी कि बड़ी आसानी से ऊंची से ऊंची डिग्री पा सकती थी। क्योकि घर में साधनों की कमी न थी। यह ठीक है कि उन दिनों लड़कियों को विद्या नही दी जाती थी, और अपढ भी रखा जाता था। पर उन्हें मूर्ख या अज्ञान कभी नही रखा जाता था। घर के काम से वे खूब वाकिफ होती थी। और अदब-शासन कला बुरी चीज नही है, तो यह उन्हें काफी से ज्यादा सिखा दी जाती थी। बारह वर्ष की लड़की भी बेवा होकर अगर उसे मौका दिया जाय तो बड़ी दूकान संभाल सकती थी, जमीदारी संभाल सकती थी, और अगर वे गरीब घराने में पैदा हुई हों तो अपने खाने-पहनने का इन्तजाम कर सकती थी। यही वजह थी कि जैनेन्द्र कुमार की माँ को जब जैसा अवसर मिला, उन्होने उस अवसर पर अपने आपको उसके काबिल साबित कर दिखाया। यों जैनेन्द्रकुमार एक बड़ी योग्य माता की देन हैं।

जैनेन्द्रकुमार के पिता अपने हाथ-पांव पर भरोसा करने वाले घराने में पैदा हुए थे। उस घराने के लिहाज से जितनी तालीम मिल सकती थी, उतनी तालीम उन्होंने जरूर पाई। पटवारी का इम्तहान पास थे। पर

हाथ-पाव पर भरोसा करने वाले होने की वजह से पटवारी का काम कभी किया नही। हा, कुछ दिनों स्टाम्प्स-फरोसी जरूरी की। पर वह नौकरी नही थी। उससे घर का मामूली काम चलता था। पर ज्यादह काम तो उसी से चलता था जो वह अपने हाथ-पांव की मेहनत से कमाते थे। वह अपनी क्लास मे हिसाव में सवसे अव्वल थे। कहानी कहते थे तो सीन खड़ा कर देते थे। उनकी कहानी सुनने मे ऐसी अच्छी लगती थी जैसी मुंशी अजमेरी की। दोनों की कहानिया हमने सुनी है। जैनेन्द्रकुमार के पिता को अगर अवसर मिलता तो वह अच्छे साहित्यकार सिद्ध हो सकते थे, और अच्छे इन्जीनियर भी।

यह थे जैनेन्द्रकुमार के पिता। और उनकी इस देन से जो भी आज तक हमने पाया, वह इतना नही है कि हमे कुछ अचरज हो।

जैनेन्द्रकुमार का जन्म सन् १९०४ की सकट चौथ को हुआ। अभी नाम रखने का दिन भी न आया था कि वाल-जैनेन्द्र के माता निकल आई। इतना ही अच्छा हुआ कि वह वहुत जोर की न थी। पर वह दृश्य हमारी आँखो के सामने है जव वाल-जैनेन्द्र अपनी कोहनी खाट पर टेक कर, वडी कोशिश से हाथ उठाकर और सिर्फ कलाई पर हाथ मोड़कर अपने चेहरे पर की मक्खी उडाता था। हो सकता है उस काम मे उसके लिये बहुत वड़ी कोशिश रही हो, पर हमारे लिये तो वह तमाशा ही था। उन दिनों हम १९ वर्ष के थे पर किसी वजह से सोहर जाने से न रुक सकते थे। इसलिये हम और जैनेन्द्रकुमार की माँ दोनों ही घंटो वाल-जैनेन्द्र के यह खेल देखा करते थे। हम चाहते तो मक्खी उड़ा सकते थे, और कभी कभी उड़ा भी देते थे। पर मुँह पर पड़ी मक्खी को तो उड़ाता देखने में ही मजा आता था। वाल-जैनेन्द्र की उस समय की हरकतों को देखकर हम न जाने अपने मन में क्या क्या सोचा करते थे। खैर, छठे दिन नाम रखने का वक्त आया और पडित ने यह भविष्यवाणी की कि वाल-जैनेन्द्र अपने बाप लिये बहुत भारी साबित होगा। उसका यह कहना था कि बाल जैनेन्द्र अपने बाप की निगाहो से उतर गये। और सन् १९०७ में जब वह बीमार पड़े और वाल-जैनेन्द्र को उनकी गोद में दिया गया तो वह उसको थोड़ी

देर ही ले पाये थे कि उनको कुछ तकलीफ शुरू हुई और उन्होने तुरंत ही बाल-जैनेन्द्र को यह कहकर कि यह मुझे खाकर ही रहेगा उनकी माँ के सुपुर्द कर दिया। और उसके कुछ महीनों के बाद वह सचमुच ही चल बसे।

जैनेन्द्रकुमार इस तरह बाप के गुण ही विरासत में पा सके, और कुछ तो क्या उनका प्यार भी उन्हे न मिला। पर जिस के भाग्य मे प्यार बदा है, वह उसको क्यो न पाये? बाप का प्यार न मिला तो मामा के इतने प्यारे बन गये कि १५ वर्ष की उमर तक वह यही न समझ पाये कि मामा उनके मामा है, या उनके बाप।

सन् १९०७ मे ही जैनेन्द्रकुमार अपनी माँ समेत अपने मामा के घर पहुच गये। और वहा इनने एकमेक हो गये कि रिश्तेदारो को छोडकर कोई कभी यह जान ही न पाया कि उनके बाप जीवित नही है।

जैनेन्द्रकुमार की दो बहने है, दोनो ही बडी है। उनमे से एक तो इतनी बड़ी है, कि वह जैनेन्द्रकुमार को इतना प्यार करती है जितना प्यार शायद उनको माँ से भी न मिला होगा। जब जैनेन्द्रकुमार छोटे थे, तब उनकी बडी बहन उनके लिये अपने खिलौने और अपनी खाने-पीने की चीजें ऐसे ही सेत कर रखती थी, जैसे माँ बेटे के लिये। इन बहन की शादी बडी होते हुये भी इसलिये न हो पाई थी कि वह हमेशा अपनी नानी के पास रही। और उनकी नानी बहुत छोटी उम्र की शादी के खिलाफ थीं हाँ, छोटी बहन की शादी उन्हीं दिनो हुई थी जब जैनेन्द्रकुमार सोहर में थे।

जैनेन्द्रकुमार पर बाहरी असर जितना माँ और मामा का है, उतना ही असर उनकी बड़ी बहन का भी है। उनकी बड़ी बहन आज जीवित है, और ५० से ऊपर होते हुए भी बालकों जैसा स्वभाव रखती हैं। हो सकता है जैनेन्द्रकुमार ने अपनी बड़ी बहन से बहुत कुछ लिया।

हमारा यह ख्याल है कि जो आदमी बचपन मे जितना भोला होता है, उतना ही बडेपन मे उसे होशियार होना चाहिये। असल मे भोलापन माने—सच और झूठ मे भेद न करना, सभी को सच समझना और हर सीख को लेने के लिये तैयार रहना। ऐसे भोले बालको के साथ कोई

आदमी धोखेबाजी कर के उन को बेहद बुरा बना सकता है। और अगर वही बालक किसी भले आदमी के पाले पड़ जाये तो बहुत भला बन सकता है। अब जैनेन्द्रकुमार के बचपन के भोलेपन का कुछ हाल सुनिये।

एक बार बाल-जैनेन्द्र को जोर का पेशाब लगा। माँ और मामी दोनों ही घरेलू काम में इतनी लगी हुई थीं कि एक-दो बार तो इनकी बात पर ध्यान ही नही दिया गया कि यह क्या कह रहे हैं, और जब ध्यान दिया तो व्यंग और गुस्से से भरा हुआ। बाल जैनेन्द्र ने पूछा :

अम्मा मुत्ती कहा करूं ?

कर ले चूल्हे मे।

बाल-जैनेन्द्र को व्यंग और गुस्से से क्या लेना। वह सीधे चूल्हे पर पहुँचे और बड़े आराम के साथ पेशाब कर आये। मामी ने देखा तो हंस पड़ी और उन्हे पकड़ कर अपनी जीजी यानी उनकी माँ के पास ले गई। वह भी यह सब सुन कर हंस दी। इन्हें गले लगाया और कुछ समझा दिया। मामला यही तक न रहा। जब उनके मामा घर आये तो उनकी माँ ने शिकायत की शक्ल में उन से यह कहा कि देखो इस ने आज चूल्हे में पेशाब कर दिया। उन्हों ने ज्यादह पूछताछ तो की नही उनके एक चपत जड़ दिया। यह थोड़े से रोये, उसके बाद फिर चूल्हे में पेशाब करने की बात उन्हे कभी न जंची और कभी माँ या मामी के धोखे मे न आये।

मामा को यह बहुत प्यारे थे। मामा ने प्यार में इन का नाम बंदर रख छोड़ा था। और बन्दर नाम रखने की वजह यह थी कि बन्दर के नाम से पुकारे जाने पर यह जो ऊँ ऊँ की आवाज निकालते थे वह बिलकुल बन्दर से मिलती-जुलती होती थी। मामा की बन्दर की आवाज पर यह इतने लागू थे कि सोते हुये भी जाग पड़ते थे। और इसकी वजह यह भी थी कि जब भी इन्हें आवाज लगती थी तो इन्हें या तो कुछ खाने-खेलने की चीज मिलती थी और ऐसा न हुआ तो गोदी में कुछ दूर टहलने का मौका तो मिलता ही था। मामा भी इन को अजब ढंग के मिले थे जो रात को दो बजे भी इन्हे जगाकर गोदी में टहलाने ले जाते थे।

इस सब प्यार का एक नतीजा और हुआ। एक मरतबा इनकी माँ की रजाई पर कोयले की एक चिन्गारी गिर पड़ी थी, और उस में इतना सुराख हो गया था जिस में बाल-जैनेन्द्र की अंगुली जा सकती थी। बस अब इन का यह हाल था कि जैसे ही बन्दर आवाज सुनी और इन्होने अपनी अंगुली रजाई के उस सुराख में इसलिये डाली कि उसे बड़ा करके मामा को देखू। पर उस से तो उलटा सुराख बंद हो जाता था, और फिर यह जोर लगाते थे। और इस तरह सुराख यहाँ तक बड़ा कर लिया गया कि यह बन्दर की आवाज सुनकर फौरन ही जाग जाते थे। और कोशिश करके बड़ी तेजी से अपना सिर उस में होकर निकाल लेते थे। और तब ऊ ऊं कहते थे क्योंकि यह मनबहलाव का खेल बन गया था इसलिये रजाई के उस सुराख की मरम्मत नही की जाती थी।

कुछ दिनों बाद जैनेन्द्रकुमार अपनी सूझबूझ से काम लेने लगे। मामा के साथ रहने के यह बड़े शौकीन थे, इसलिये जब मामा खाने बैठते थे, तो यह उनके जूतों पर जा बैठते थे, वह इस दूरनदेशी से कि मामा जब बाहर जायेंगे तो जूते पहनेंगे ही और बस फिर हम उनके साथ हो लेंगे। पर जब मामा को यह पता चला तो उन्हे एक दिन इन्हे धोखा देने की सूझी। और वह जूता पहने बगैर दूसरे रास्ते से चल दीये। जब काफी से ज्यादा देर हो गई तब बाल-जैनेन्द्र तलाश करते हुए अन्दर आये और लगे अपनी माँ से पूछने कि मामा कहा है? बस यह जवाब सुनकर कि मामा तो बड़ी देर से चले गये, माँ और मामी पर पिल पडे, कि उन्हे यह सब क्यो नही बताया गया। खैर उन्होने तो माफी मांगकर समझा बुझाकर उनसे पीछा छुड़ाया। पर मामा से जो यह रूठे तो तभी मनें जब उन्होने यह कह दिया कि अब वह वैसा नही करेंगे। और उन्होनें अपना बचन निभाया।

बाल-जैनेन्द्र ने कही किसी से सुन लिया या शायद सीधे किसी ने उनसे यह कह दिया कि रुपया बो देने से उग जाता है, उसका पेड़ खड़ा हो जाता है, और उसमे रुपये लगते हैं। बस अब क्या था, बड़ी बहन की गुल्लक खोल उसमे से एक रुपया निकाला और बाहर किसी पेड़ के नीचे

न्वो आये। उसे कुछ दिनो पानी भी देते रहे। होनहार की वात कि कुछ ही दिनों वाद उनके मामा वहा से चल दिये, और उस जगह को हमेशा के लिये छोड दिया। एक मरतवा इस रुपया वोने की घटना के पाच-छ महीने वाद, इनके मामा जव रेल से कही जा रहे थे तो यह उनके साथ थे। जव वह स्टेशन आया जहा इन्होने रुपया वोया था तव अपने मामा से वोले, "मै यहाँ उतरूगा"।

मामा ने पूछा, "किस लिये" वोले, "मैंने यहा रुपया वो रखा है, अब वह उग आया होगा"।

मामा यह सुन कर हस दिये। पर यह उनकी हसी पर उन्हे इस तरह देख रहे थे, मानो कह रहे थे कि हमारे मामा इतना भी नही समझते!

एक दिन का जिक्र है किसी वजह से घर में एक वूद दूध न था। वाल-जैनेन्द्र ने मा से दूध मागा। उन्होंने कह दिया वेटा दूध तो नही है, मिठाई ले लो, मठरी लेलो, फल ले लो। पर वाल-जैनेन्द्र किसी पर राजी नही हुये, वह दूध के लिये ही हठ करते रहे। और जब मां ने फिर यही कहा कि वेटा दूध घर मे नही है, कहा से लाऊ? तव आप वोले कि दूध टट्टी घर में वखेरने के लिये है और मेरे पीने के लिये नही। घर का घर यह सुनकर हस पडा क्यो कि वाल-जैनेन्द्र टट्टी घर मे वखेरे हुये फिनायल को ही दूध समझे हुये थे। उन्हे जितना ही यह समझाने की कोशिश की गई कि वह दूध नही है, उतना ही उनके गुस्से का पारा चढ़ता गया। आखिर मे रूठ कर वाहर वरामदे में जा वैठे, और फिर पड़ौस से दूध आने पर ही माने।

घर मे इन से छोटा वच्चा कोई न था। इसलिये इनको सव ही का प्यार मिलता था। यह प्यार से अघाये हुए थे, इसलिये प्यार उंडेलना चाहते थे। अव यह उंडेले तो किस पर? पड़ोस में भी इनसे छोटा कोई वच्चा न था, पर इन्हे तो कोई चाहिये ही। एक दिन एक पिल्ला पकड़ लाये। वस फिर क्या था, उस पर इतना प्यार उंडेला गया कि वह किं-किं कर के इनसे अपना पीछा छुड़ाने की कोशिश करने लगा। पर यह कव छोडने लगे, कभी उसको कुछ खिलाना, कभी ग्लास से पानी पिलाना, कभी उसे उठाकर सुलाना, कभी गोदी लेना, और कभी उस के

पंजो से तग आकर उसे छोड़ देने पर, गिर जाने पर फिर उसे प्यार से उठाना और थपथपाना, चारपाई पर सुलाना। घंटे डेढ़ घटे मे ही वह पिल्ला इन के प्यार से ऊब गया और इन से पीछा छुड़ाकर भाग गया। यह उस के पीछे बहुत भागे पर वह हाथ न आया। घर के और लोगों को जरा भी उस पिल्ले से प्यार होता, तो हो सकता था कि वह फिर पकड़ लिया जाता। पर वैसा न हुआ, इसलिये इनका यह शौक एक दिन और वह भी एक घटे से ज्यादा न चला।

हम बहुत सोचने पर भी यह नही बता सकते कि बाल-जैनेन्द्र को और बच्चो की तरह भूख का ज्ञान क्यो नही था। भूख तो बच्चों के साथ साथ जन्म लेती है। इन के साथ उसने जन्म लिया या नही, यह पता नही। कोई यह न समझे कि इन्हे भूख ही नही लगती थी और यह खाने के लिये कोई चीज ही नही मागते थे या यह कि बहुत छुटपन में भूख से कभी रोये ही नही। नही नही, यह छुटपन में भूख से ऐसे ही रोते थे जैसे कि और बच्चे। पर जब यह छ. बरस के थे तब स्कूल से ११ बजे जब यह बहुत भूखे लौटते थे तो यह खाना नही मागते थे। मा से आते ही बस यह कहते थे कि माँ मेरे पेट में दर्द होता है। माँ इन्हे खूब पहचानती थी कि यह दर्द नही है भूख की पुकार है। और वह इन के दर्द का वही इलाज करती थी कि इनको खाना खिला देती थी और इनका दर्द ठीक हो जाता था। भूख से जो तकलीफ इनके पेट मे होती थी उस तकलीफ का नाता यह भूख से जोडना पसन्द नही करते थे। उसका ज्यों का त्यो हाल अपनी माँ को बता देते थे। दूसरे शब्दो मे भूख का नाम इन्होंने दर्द रख छोडा था, और दर्द का दूसरा नाम वेदना है। और दार्शनिकों की बोली में भूख प्रतिकूल वेदना के सिवाय और है ही क्या? यों अगर पढने वाले चाहे तो बाल-जैनेन्द्र को बाल-दार्शनिक भी कह सकते है।

घराने के रिवाज के मुताबिक इनका विद्यारम्भ संस्कार, आ, ई से न होकर अलिफ, बे, ते, से हुआ। और होनहार की बात कि सात बरस की उम्र में ही यह एक ऐसे गुरुकुल मे दाखिल हो गये, जहां क ख ग ज्ञ नागरी अक्षरों मे शामिल समझे जाते थे। इनका शीन-काफ ऐसा ही

दुरुस्त है जैसा किसी फारसी-दांका । इनके मामा के घराने का भी शीन क़ाफ दुरुस्त था क्योंकि उस घर में औरतों को छोड़कर सभी फ़ारसी पढ़े थे । और अब तीस-पैंतीस बरस से दिल्ली मे रहने की वजह से उस शीन काफ को कोई नुकसान नही पहुँचा है, और यह उर्दू साहित्य में इसी वजह से काफी रस ले लेते है ।

कही ऊपर यह कहा गया है कि यह १५ बरस तक अपने मामा को अपना पिता ही समझते रहे । इसकी एक वजह तो यह थी कि जब यह चार बरस के थे तब इनके घर मे इन के एक ममेरे भाई का जन्म हुआ । वह जब बोलने के काबिल हुआ तो इनकी देखादेखी अपने बाप को मामा कहकर पुकारने लगा । इस बारे में घरमें से किसी ने ध्यान नही दिया और कोई रोकथाम भी न की गई । अब इनके लिये कोई मौका ही न रह गया कि यह मामा और बाप में कोई भेद कर सके । और कभी कभी अपने ममेरे भाई को अपनी माँ का दूध पीते देखकर तो इन्हें यह शक ही न रह गया कि इनका ममेरा भाई इनका सगा भाई नही है । दूसरी वजह यह हुई कि सात बरस की उम्र में बाल-जैनेन्द्र जैसे ही गुरुकुल मे दाखिल हुये तो चार बरस का ममेरा भाई भी इनके साथ था । यह दूसरी बात है कि दोनो एक क्लास मे नही थे । बस एक दिन १५ बरस की उम्र में जब जैनेन्द्र ने गुरुकुल का प्रवेश रजिस्टर देखा और उसमें अपने बाप के नाम की जगह प्यारेलाल लिखा पाया और सरक्षक की जगह अपने मामा का नाम पाया, तब पता लगा कि मामा, मामा थे बाप नही थे ।

कही ऊपर हम यह भी कह आये है कि बाल-जैनेन्द्र को अपना प्यार उडेलने के लिये घर मे कोई न दीखता था । इसलिये सग साथ में जब इनके ममेरे भाई का जन्म हुआ तो इनकी खुशी का ठिकाना नही था । अगर इनका बस चलता तो उसी वक्त उसे अपने पास ले आते और क्या अचरज कि उसे कुछ खिलाने मे लग जाते । क्योकि गुरुकुल में यह अक्सर दूर से अपने ममेरे भाई को ताका करते थे और जब वह इनकी तरफ देखता था तो दोनो मुस्करा देते थे और फिर यह मुस्कराहट हसी में तब्दील हो जाती थी ।

होनहार की बात कि गुरुकुल में भी इनसे छोटा सिर्फ इनका ममेरा भाई ही था, बाकी सब बड़े थे। गुरुकुल की स्थापना सन् ११ में हुई थी और उसके शुरू के पाँच ब्रह्मचारियों में से यह भी एक थे।

जैनेन्द्र का गुरुकुल-जीवन

"जैनेन्द्र" यह गुरुकुल का दिया हुआ नाम है। सन् ११ को वैसाख सुदी तीज से पहले जैनेन्द्र का नाम आनन्दीलाल था।

गुरुकुल में सन् ११ के खत्म होते होते ४० ब्रह्मचारी हो गये थे। उन ४० में सिर्फ एक ही विद्यार्थी था जो इतना ही कुशाग्र-बुद्धि था जितना जैनेन्द्र, और उसका नाम था रामेन्द्र। गुरुकुल के अधिष्ठाता लीक-लीक चलने वाले आदमी नही थे। वह मौके-मौके पर वही करते थे जो उनको ठीक सूझता था। गुरुकुल का आम नियम यह था कि सुबह चार बजे उठना और रात को नौ बजे सो जाना। पर जैनेन्द्र और रामेन्द्र इन दोनों ही के लिये यह काम मुश्किल ही नही, असंभव थे। इनको नौ बजे तक जगाना इतना ही बुरा काम था जितना किसी को रस्सी बांधकर खड़ा रखना और चार बजे उठाना उतना ही मुश्किल काम था जितना खाली बोरे को खड़े रखने की कोशिश करना। इन्हे देर से उठने और जल्दी सो जाने के ऐबो (अगर यह ऐब है) के साथ साथ इन दोनो मे पढ़ने लिखने के अनेक गुण थे, इसलिये यह दोनों चार बजे उठने और नौ बजे सोने के अपवाद बनाये गये। और इस अपवाद की वजह से इनके साथी ब्रह्मचारी इन से कोई डाह नही करते थे। इनका आदर करते थे, और इनको ठेकेदार के नाम से पुकारते थे। ठेकेदार यो कि यह अपना पाठ शाम को जब सुना दें तभी से यह सोने के लिये आजाद थे। उठने के लिये यो आजाद थे कि गुरुकुल की खास क्रियाओ मे यह ठीक वक्त पर शामिल हो जाते थे। गुरुकुल की पढाई-लिखाई मे जैनेन्द्रकुमार को सिर्फ होशियार ही नही कहा जा सकता, काफी से ज्यादा होशियार कहना पड़ेगा। क्योंकि उम्र के लिहाज से तीसरी क्लास में सब से अव्वल आने पर भी सिर्फ इस वास्ते यह चौथी क्लास में नही चढाये गये थे कि चौथी क्लास की पढाई का बोझ उस उम्र के बालक के लिये, गुरुकुल के मुख्य अधिष्ठाता

की नजर मे काफी से ज्यादा था। हम याद है कि यह सुनकर जैनेन्द्रको काफी तकलीफ हुई थी, पर मर्ज़ी के माफिक घूमने-फिरने के आनन्द में वह तकलीफ जल्दी ही भुलाई जा सकी थी।

एक बार मुख्य अधिष्ठाता का एक हल्का-मा चपत खाकर यह बुरी तरह बिगड़े थे, और वह इस वजह से कि जिस बात के लिये इन्हें सजा मिली थी उस मे उनका कोई कसूर नही था। इन्होंने अपनी सफाई देकर यह पूरी अच्छी तरह साबित कर दिया कि उनको जो चपत लगा है वह एक बेकसूर को लगा है। मुख्य अधिष्ठाता एक समझदार आदमी थे, उन्होने इन से माफी मांगी। जिस के जवाब मे यह बोले, "आप के माफ़ी मागने से जो चपत मेरे लग गया है वह बेलगा हुआ तो नही हो सकता?"

इसपर अधिष्ठाता जी बोले, "तो फिर भाई चपत की जगह चपत मारलो।"

इस के जवाब में इन्होने कहा कि ऐसा करना तो और भी बुरा होगा, और ऐसा करने से भी मुझको लगा हुआ चपत बेलगा हुआ कैसे हो सकता है। आखिर फैसला इस बात पर हुआ कि अधिष्ठाता जी आइन्दा इस बात का बहुत ख्याल रखेंगे कि बेकसूर किसी को छोटी से छोटी सजा भी न दी जाय। जब का यह जिक्र है उस वक्त जैनेन्द्रकुमार का नवां बरस चल रहा था।

यह हम कह ही चुके है कि जैनेन्द्रकुमार पढ़ाई-लिखाई में सब से आगे थे। छ: महीने पढ़ने-लिखने से छुट्टी पाकर, और अपना समय खेल-कूद में बिताकर भी किसी से पीछे नही रहे। यह सब तो था पर बोलने और लिखने मे यह अपनी क्लास में आखिरी सिरे पर थे। यह ठीक है कि यह अपनी क्लास में सब से छोटे थे, पर इससे क्या। क्लास मे जब सब से अव्वल थे तो बोलने और लिखने मे भी अव्वल होना चाहिये था। इनकी क्लास मे यह नौ बरस के थे और बाकी सब बारह और तेरह के बीच के थे। थोड़ा थोड़ा तो सभी बोल लेते थे, पर उनमें से तीन-चार तो ऐसे थे जो अचानक दिये हुये विषय पर पन्द्रह-बीस मिनट तक बोल सकते थे। उनमें से एक ब्रह्मचारी ने तो एक मशहूर उपदेशक के व्याख्यान

का खंडन पांच मिनट की तैयारी के बल पर सभा के मंच से किया था। पर इन सब बातो का कभी कोई असर जैनेन्द्रकुमार पर नहीं हुआ। वह गुरुकुल की सभा मे कभी एक मिनट बोल कर नहीं दिये और न कभी गुरुकुल के हाथ लिखे मैगजीन मे अपने नाम से एक लाइन दी। अध्यापको और लोगो ने कभी कभी मजबूर भी किया पर मुख्य अधिष्ठाता ने उनपर कभी कोई जोर नही डाला।

और ब्रह्मचारियो के लिहाज से इनकी खुराक काफी कम थी। इतनी कम थी कि चिन्ता का विषय बन गई थी। पर गुरुकुल के डाक्टर ने यह समझदारी ही की कि इनको बीमार नही समझा। और उसकी एक वजह यह भी थी कि इस कम खुरी मे भी इनका एक साथी था, और वह इनसे भी कहीं आगे था। वह तो दिन भर में पतली पतली चार रोटियो से ज्यादा नही खाता था, दूध भी बहुत ही कम पीता था। पर उसकी कम खुरी की वजह यह थी कि वह तीन-तीन चार-चार रोज टट्टी नही जाता था। पर जैनेन्द्र के साथ तो यह बात नही थी। यह ठीक है कि गुरुकुल का खाना काफी भारी होता था, पर वह तो सभी के लिये था। उसकी उम्र के और बाद आये छोटे ब्रह्मचारी भी जैनेन्द्र से सवाया और डयोढा खा सकते थे। बस कम खाने की बात को सिर्फ इसलिये चिन्ता की बात नहीं समझा गया कि खेलकूद में जैनेन्द्र पूरा हिस्सा लेते थे और सब मे अव्वल नही थे तो सब से पीछे भी नही थे।

गुरुकुल में शतरज खेलना मना न था। मना कैसा, एक तरीके से खिलाया जाता था। और उसे किसी हद तक जरूरी समझा जाता था। हां, उसके दिन और वक्त नियत थे। शतरंज के खेल मे जैनेन्द्र कई अध्यापको से भी अच्छा खेल लेते थे।

किसी वजह से जैनेन्द्रकुमार को अपनी तालीम पूरी किये बिना गुरुकुल छोडना पड़ा और सन् १८ में मास्टर बलवतसिहजी के पास बिजनौर मे रहकर पंजाब मैट्रिक की तैयारी की। और जिस साल गांधीजी के पकड़े जाने की वजह से दिल्ली में गोली चली, उसी साल पंजाब मैट्रिक का इम्तहान दिया और इत्तफाक से दिल्ली टाउन हाल पर जिस वक्त गोली

चली थी उस वक्त चौदह बरस के जैनेन्द्रकुमार वहीं मौजूद थे और उस गोली-कांड को ऐसे देखते रहे मानों उसके लिये वह एक मामूली खेल था।

मैट्रिक करने के बाद वह बनारस यूनिवर्सिटी में दाखिल हो गये और सन् २० में जब असहयोग आन्दोलन जोरों के साथ शुरू हुआ तब इन्होंने अपने मामा को एक पत्र लिखा कि वह कालेज छोड़कर आन्दोलन में हिस्सा लेना चाहते हैं। जिसके जवाब मे उनके मामा ने लिखा कि होना तो यह चाहिये था कि तुम मुझे खबर देते कि तुमने कालेज छोड़ दिया है, न कि यह कि तुम मुझ से कालेज छोड़ने की इजाजत चाह रहे हो। इस खत को पाकर इन्होंने वही किया जो करने के लिये वह खत उन्हें झिड़क रहा था। जैनेन्द्रकुमार का इस वक्त सोलहवां वर्ष चल रहा था।

जैनेन्द्रकुमार का इससे आगे का जीवन बालकपन की हद से परे चला जाता है, इसलिये इसको हम यही खत्म करते है।

: ५ :

रामदेवी बाई

रामदेवी बाई, जिन्होने जैनेन्द्रकुमार को जन्म दिया, समाज के लिये ऐसी बाई नही जिनका परिचय जैनेन्द्र की माता कह कर दिया जाय। समाज में उनका अपना स्थान था। उनको इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त थी कि आज उनके स्वर्गवास होने के सोलह वर्ष बाद भी उन पर कुछ लिखने के लिये; मेरी राय में किसी लंबी-चौड़ी भूमिका की जरूरत नही। उनका जीवन इतना बोलता जीवन है कि पाठक अगर यह बात भी न जानें कि रामदेवी बाई कौन थी, कहा की थी, किसकी पुत्री और किसकी माता थी, किसकी पत्नी और किसकी बहन थी, तब भी उनकी जीवन घटना से लाभ उठा सकते है।

रामदेवी बाई का जन्म सन् १८७७ में अलीगढ़ जिले की तहसील अतरौली नगर मे हुआ। जन्म के समय रामदेवी के पिता राजघाट के निकट गंगा से निकली नहर के नरोरा डिवीजन के इञ्जिनियर थे। पहली सन्तान होने के कारण यह अपने मां-बाप दोनो को प्यारी थी। उनकी मां से हमने जब यह घटना सुनी कि जब यह छ-सात महीने की थी तब इनके पिता ने इनको नहर में फेंक दिया था, तब हम घबराये और पूछ बैठे, यह क्यो? जवाब मिला, उनके पिता अच्छे तैराक थे और अपनी तैराकी के बलबूते उन्होंने ऐसा किया था। फिर कूद कर चट निकाल भी तो लाये थे। उनके पिता ने ऐसा क्यो किया? इसका कारण हमें यह बताया गया कि बच्चे का पानी से डर निकालने के लिये। पानी से डर निकला या नही यह हम नही जानते, इतना जरूर जानते हैं कि उनका हृदय अपने पिता के लिये इतना मोह से भरा था कि वे जब अपने पिता के स्वर्गवास की खबर सुनकर अपनी ससुराल से आईं तब इतना दुख माना कि उनकी जान के लाले पड़ गये। एक बार यह समझ लिया गया कि उनकी जान निकल गई और कफ़न लेने के लिये आदमी भेज दिया गया। पर, कफन आते आते उनके प्राण लौट आये। इस झूठी बात के बल पर कुछ देर के

लिये उनके प्राण को रोके रखने की कोशिश की गई कि उनके पिता का देहान्त नहीं हुआ, वे अन्दर सोये हैं, और अगर वह रोयेंगी-पीटेंगी तो उनकी नींद खराब हो जाने का डर है। इस झूठ बात ने सचमुच जादू का काम किया। पन्द्रह-बीस मिनट बाद वह इस काबिल हो गई कि वह अपने पिता के स्वर्गवास हो जाने के दुख को सह सकें। उनके हृदय की बनावट कुछ इस किस्म की थी कि उनको अपने भाई, अपनी मां, और अपने पिता से बेहद गहरा लगाव था। तभी तो पिता के स्वर्गवास होने के पहले एक बार और अपने सोलह बरस के भाई के स्वर्गवास के समय उनका वही हाल हो गया था जो पिता के स्वर्गवास के समय हुआ।

उस समय, जब रामदेवी बाई छोटी थी, लड़कियों को ज्यादा पढ़ाने लिखाने का रिवाज न उस कुल मे था, न उस जाति में था जिसमें उन्होंने जन्म लिया था। लिखने-पढ़ने की मामूली तालीम उन्हें एक अध्यापक घर पर रखकर जरूर दिलाई गई जिस अध्यापकको वह पाठाजी कहकर बोलती थी। उस मामूली पढाई-लिखाई के नाते रामदेवी बाईने अपने मरते दम तक उस पाठक की इतनी कद्र की मानो वह छोटी बच्ची हों और अब भी उससे पढती हों। जब रामदेवी बाई अतरौली जाती, उन पाठाजी के यहा कुछ भेट जरूर पहुंचाती।

रामदेवी बाई के कितने ही बहन-भाई थे पर १८९७ में यानी उनकी बीस बरस की उमर में सिर्फ एक छोटा भाई रह गया। यों वह अपने माता पिता की दो संतान में से एक थी। उनका भाई उनसे नौ बरस छोटा था। इन्होंने इसे गोद खिलाया था और मरतेदम उस भाई से ऐसी ही मुहब्बत और इतना ही मोह रहा जितना एक मां को अपने बेटे से होता है। इतना गहरा मोह, इतनी गहरी मुहब्बत कभी खाली नहीं जा सकती, इसलिये रामदेवी बाई को मरतेदम तक अपने छोटे भाई से वही श्रद्धा और भक्ति मिलती रही जो उन्हें एक बेटेसे मिलनी चाहिये थी।

रामदेवी का विवाह सन् १८८९ में हुआ जब वह बारह बरस की थी। उन दिनों छोटी उम्र के विवाह का रिवाज था। वह उस रिवाज से कैसे बच सकती। यही अच्छा था कि उस बुरे रिवाज के साथ एक भलाई थी कि

विवाह नाम के लिये ही होता था। गौने और चाले के नाम से दो रस्मे और होती थी और असली विवाह अपना पूरा रूप इन्ही रस्मों के वाद लेता था। रामदेवीबाई के कुल मिला कर छः बच्चे हुए। तीन छोटी उम्र में चल वसे और तीन आज तक जीवित है—दो लड़किया और एक लड़का। दोनो लडकिया वड़ी है और लड़का उनसे छोटा, वही छोटा लडका जैनेन्द्र कुमार के नाम से प्रसिद्ध है, और समाज उसे अच्छी तरह जानता है। आज रामदेवीबाई के सारे कुटुव की गिन्ती ३५ होती है। वे अपने पोते पोतियो, नाती नतनियो को देखकर इस दुनिया से सिधारीं।

सन् १९२७ में वे विधवा हो गईं और विधवा होने के पाच छः महीने बाद अपने भाई के यहां पहुच गईं और भाई के कुटुव की कुटुवी वन गईं। अगर यह कहना कोई वुरी बात नही, कि रामदेवी बाई के अन्दर रहने वाली सारी शक्तियो का विकास विधवा होने के वाद हुआ इसलिये विधवा होना उनके लिये भला रहा, तो हम यह कहेंगे कि स्त्रियो के लिये विवाहित जीवन जितना बन्धन का जीवन है उतना विधवा जीवन नही। हा, यह जरूरी है कि एक स्त्री को विधवा होने के वाद यानी स्वाधीन होने के बाद, अपना जीवन समाज सेवा मे लगाना चाहिये, तभी वह अपनी स्वाधीनता का ठीक ठीक उपयोग कर सकती है। रामदेवी बाई ने ऐसा ही किया, इसलिये उनका जीवन, दूसरी और विधवाओं की अपेक्षा, अधिक सफल और सुखी रहा।

विधवा होने के तीन महीने बाद उन्ही के गाव में रहनेवाले एक चालीस वर्ष के विधुर ने उनको जाल में फंसाने की कोशिश की, पर वह किसी तरह न फंस पाईं। अचरज की बात यह है कि यह आदमी करीवी रिश्तेदार था। इस भेद को रामदेवी ने अपनी मौत के दो बरस पहले खोला। रामदेवीबाई के पिता इञ्जिनियर थे यह पहले ही कहा जा चुका है। इसलिये रामदेवीवाई का वालकपन हिन्दुस्तान के एक ही सूबे में नही, कई सूवो में बीता। इसलिये उनको थोड़ा थोड़ा ज्ञान पंजावी, वंगाली, कन्नड; तामिल, मराठी बोलियो का था पर सिर्फ इतना कि उनके दो-चार शब्द याद थे, एक से नौ तक गिनती याद थी। ये शब्द यो इनकी जवान पर

चढ़ गये थे कि उनके घर जो धोबी, नाई काम करने आते थे उन से रोज वे शब्द सुनती थी। बचपन में अलग-अलग प्रान्तों में अलग अलग रिवाज देखने की वजह से उनका हृदय काफी उदार बन गया था, इसलिये वह अपनी लड़कियो को ऐसे कपड़े पहना देती थी जिनका रिवाज बिरादरी में न था। इस वजह उन लड़कियों की खूब हंसी उड़ाई जाती थी। कपड़ो के नाम पर उन्हे सिन्धी, पंजाबी, मराठी नाम दे दिये जाते थे। अपने बचपन की वह जब बाते सुनाने बैठती थी तब ऐसा लगता था मानों कहानी कही जा रही है। एक जगह का जिक्र सुनाते हुए वह कहने लगी, वहा जब कुम्हार के यहा हम वर्तन लेने जाते तब वह घड़े को अपने मकान के पीछे फेंक देता और अगर वह टूट जाय तो उसका, साबुत रहे तो लेनेवाले का। उन्होंने यह भी बताया कि वहां मिट्टी की ओखली इतनी मजबूत होती थी कि उसमे मिट्टी की मूसली से कूटा जा सकता था। वैसी ओखली उनके घर में थी। जब वह तामिल की गिनती सुनाती तब जो धुन वह निकालती वह बड़ी प्यारी और अनोखी मालूम होती। जगह जगह के रहन-सहन, ओढावे-पहनावे का उनसे जिक्र सुनने मे आनन्द आता था।

एक बात उन्होंने बडी अनोखी सुनाई। उनके पिताजी अपने गाव से सोलह सत्रह बरस का रसोइया ब्राह्मण अपने साथ ले गये। वह जब दक्षिण के किसी दूर कोने में पहुंचा तो वह सिर्फ यह कह कर रोने लगा कि मा जी, आप मुझे कहां ले आईं! यहा सूरज दक्षिण में निकलता है! यह सुन उनकी माताजी और उनके पिताजी ठहाका मार कर हंसने लगे और वह रसोइया बेचारा रोने लगा। दस-पांच दिनो मे, जो दिशा भूल उस रसोइये को हुई थी, वह ठीक हो गई और फिर उसके लिये सूरज पूरब में निकलने लगा।

एक बार होली के मौके पर भूल से रसोइये की घुटी भाग रामदेवी बाई सारी की सारी पी गईं। दस-पाच मिनट के बाद जब नशा चढा तो अपनी मा के पास पहुंची, लगी कहने—स्लेट फोड डालूगी, स्लेट फोड़ डालूगी। कबूतर उड़ा दूगी, कबूतर उड़ा दूगी—इसी तरह की कई बतुकी बाते कहने लगी। उनकी मा कुछ समझ न पाई, यह मामला क्या है? थोड़ी देर बाद

उनके पिताजी आगये और उन्होने कहा कि यह भांग पी गई मालूम होती है, रसोइये से पूछ-ताछ की गई तब ठीक ठीक पता लगा। उनको खटाई खिलाकर, दही पिला कर ठीक किया गया, और उन्हे नीद आ गई।

एक बार यह जंगल में खो गई। उसका जिक्र वह जब भी करती तो उन्हे अचरज होता कि मुझे मेरे माता-पिता ने खोया हुआ समझा क्यों? मैं तो जगल मे करौंदे खा रही थी। वह बूढी होने पर भी यह न समझ पाईं कि उन्हे खोजने के लिये माता-पिता क्यों बेताब हुए। अगर वह ढूढने न जाते तो वह थोड़ी देर मे घर पहुंच जाती।

छुटपन म अंग्रेज बच्चो के साथ खेलने और अग्रेज अफसरों के साथ बात-चीत करने की वजह से उन्हे अंग्रेजो का डर बिल्कुल नही रहा गया था, तभी तो वह अपने भाई के पजाब-मार्शल-ला में पकडे जाने के वक्त लाट साहब से मिलने पहुच गई थी। इसी तरह एक बार बैतूल के अग्रेज कलेक्टर को राखी बाधने पहुच गईं और उसके बदले मे कांग्रेस के लिए चदा मांगने लगी। उस कलेक्टर ने चन्दा तो नही दिया, हां, पाच सेब जरूर दिये जो उन्होंने स्वयंसेवको में बांट दिये। यह बात सन् १९२२ की है।

एक बंगाली के यहां चोरी हो जाने की कथा वह बड़ी हंस हंस कर सुनाया करती थी। उनका कहना था कि एक मच्छी बेचने वाली औरत आई। मच्छी खरीदने के लिये बंगाली बाबू की औरत ने उसके सामने ट्रंक खोल कर पैसे दिये। उस मच्छी वाली ने वह सब तालियां देख लीं जो ट्रंक मे रखी थी। वह औरत मच्छी बेचने के बाद बंगाली बाबू के मकान के पीछे एक पेड़ में पेड़ की डालियो की चोटी बांध कर चली गई। रात को उसी पेड़ के पते पर चोर आये और मकान मे घुस गये। चोरों को उसी मच्छी वाली से यह भी मालूम हो गया था कि बगाली बाबू की नौकरानी उनके बच्चे का का रोना बन्द करने के लिये किवाड़ की साकल बजा कर उनको बहलाया करती है। चोरों में से एक ने बेमतलब सांकल बजाना शुरू कर दी और उसके साथी उसी शोर के नीचे मजे से चोरी करते रहे। और उसका सारा माल ले गये। न जाने उन चोरों ने यह शरारत क्यो की, कि वह घर की जूता-जोड़ियों में से सिर्फ एक एक जूता ले गये।

रामदेवीबाई का कहना था कि जब वह सुबह चोरी का हाल सुनकर बंगाली बाबू के यहां पहुंची तो एक एक जूते की चोरी देख कर सहानुभूति की जगह हंसने लगी। उनका कहना था कि वह ही नहीं, जो कोई आता उस एक एक जूते की चोरी को देखकर हंसने लगता और सांकल बजा कर चोरी करने की बात भी कम हंसी की नहीं थी।

एक बार वह सावन की तीज के दिन गुलगुले बना कर मजदूरों को बांटने लगी। उन दिनों उनके पिताजी जहां काम करते थे वहां कहत-साली यानी अकाल पीड़ितों का काम छिड़ा हुआ था। उनके गुलगुलों को बंटते देखकर सैकड़ों मजदूर गुलगुले लेने आ पहुंचे। उनके पिताजी इस तरह की भीड़ देख कर आ पहुंचे और रामदेवी बाई से कहने लगे, लो अब बांटो इनको गुलगुले! अब वह बड़ी घबड़ाई! और कुछ न बन पड़ा, उनके पास जो दस-बीस चांदी की नई नई दुअन्नियां थीं और जो उन्होंने बड़े शौक से इकट्ठी की थीं वह सब उनमें बांट दीं। और उनके पिताजी खड़े खड़े तमाशा देखते रहे और हंसते रहे।

एक बार अपने पिताजी के साथ वह ऐसी जगह पहुंचीं जहां बिच्छू बहुत थे। वहां एक दफे ऐसा हुआ कि तीन दिन तक हर रोज एक बिच्छू इनको काटता और चौथे दिन ऐसा हुआ कि ये चारपाई पर लेटी थीं और जैसे ही घुटना पास की दीवार से लगा कि एक बिच्छू ने डंक मार दिया, यह हाथ से दीवार का सहारा-लेकर उठीं कि एक बिच्छू ने हाथ में डंक मार दिया, जैसे ही चारपाई से नीचे उतरीं कि एक ने पांव में डंक मार दिया। अब यह लगीं रोने चिल्लाने। इनके पिताजी दौड़े हुए आये और जब इन्होंने अपने पिताजी से तीन बिच्छुओं के डंक मारने की बात कही तो इनके पिताजी बोले, बिटिया, देखो अबतक तुम्हारे छः बिच्छुओं ने डंक मारा है, बस, जिस दिन इक्कीस बिच्छू तुम्हारे डंक मार चुकेंगे उस दिन तुम्हारा बदन इतना पक्का हो जायगा कि फिर कोई बिच्छू तुम्हें डंक मारे तो तुम्हें कोई तकलीफ न होगी। रामदेवी बाई का कहना था कि अपने पिताजी की बात सुन कर वह रोना छोड़कर हंस पड़ीं और हंस तो उनकी माताजी भी पड़ीं, पर उन्होंने हंसते हंसते उनके पिताजी को झिड़की दी

और रामदेवी को गोद में लेकर कहने लगी, यह भी कोई हसी का मौका है। जवाब में उनके पिताजी बोले, हंसी का मौका हो या न हो उन्होंने अपनी रोती बिटिया को एक बार तो हसा ही दिया। खैर, कुछ दवा-दारू की गई। उसके बाद बिच्छू ने कभी नहीं काटा।

नई नहर के खोले जाने की रस्म अदा होने को थी। मिठाई के पच्चीस थाल बावू लोगो मे बाटने के लिये घर मे रखे थे। उन थालो मे एक मिठाई थी, खोये के शकरपारे। वह रामदेवीबाई को खूब पसन्द आए। और दो थाल के शकरपारे सब के सब निकाल कर खा लिये, कुछ भाई को खिला दिये। उनके पिताजी ने यह देख लिया। रामदेवी से बोले, बिटिया, शाम को इन थालो की मिठाई बाटी जायगी, बाटने के पहले इनकी तोल होगी, थालो को ढंक कर रखना, चिड़िया या कोई जानवर खराब न करे। पिताजी के ये शब्द सुन कर रामदेवीबाई बड़ी घबरायी। उन्होंने रसोइये से आटे के शकरपारे बनवाकर, उन्हे पगवाकर उस कमी को पूरा कर दिया। शाम को जब थाल बटने लगे तब तोलना तो एक तरफ किसी को भी इन थालो की गिनती करने की फुरसत न थी। रात को पिताजी को जब पता चला तब वह अपनी बिटिया की होशियारी पर खूब हसे। रामदेवीबाई की समझ में न आया, इसमे हंसने की क्या बात है? उनके पिताजी ने समझाया, बिटिया, जहा हजारों मन लड्डू बांटे जा रहे है और सैकडों सेर मिठाई, वहा तोलने का क्या सवाल? तोलने की बात तो उन्होंने अपनी बिटिया से इसलिये कही थी कि आगे वह और शकरपारे न निकाले।

खाते-पीते घराने में जन्म पाकर भी, उन्होने कभी अपने को आलसी नही बनाया। जिस घराने मे वह ब्याही गई वह घराना अपनी हाथ की कमाई पर गुजर-बसर करता था, पर उस घर में यह आलसी सावित नही हुईं। उस घर में वह ऐसी बन गईं मानो उन्होने बचपन से घर के सब काम-काज किये हो। वह अपनी सास की काफी प्यारी थी। सास का सुख उनके भाग्य मे अधिक न बदा था, थोड़े दिन ही मिला। अपनी मेहनत से घर सम्हालने की वजह से उनका गार्हस्थ्य

जीवन खासा सुखी रहा। तीस बरस की उम्र मे विधवा होने के बाद उन्होंने अपने भाई का घर इतनी अच्छी तरह सम्हाला मानों वह घर उनका अपना हो। उनका भाई उनसे छोटा था, यह उसे प्यार करती थी और वह इनको मा की तरह समझता था। यह अपनी भाभी की ननद बन कर नही रही, सास बनकर नहीं रही, सदा मां बन कर रहीं। इसलिये ननद-भौजाई की कलह को घर में जगह न मिल पाई। इस तरह की कलह तभी होती है जब ननद और भौजाई के स्वार्थ अलग अलग होते हैं। अब दोनो का एक स्वार्थ था, फिर कलह के बीज को पानी कहां से मिलता ?

जब यह अपने भाई के यहां आई तब इनकी दो लड़की थी और एक लड़का। छोटी लड़की की शादी हो चुकी थी। लड़का ढाई तीन बरस का था। बडी लडकी की शादी न होने की वजह यह थी कि वह लड़की जब नौ महीने की थी तभी से नानी ने उसे अपने पास रख लिया था, और वह बराबर वही रही।

बड़ी लड़की की शादी भाई के यहां से ही हुई। वह शादी ऐसी नही है जिसका हाल पाठको को न बताया जाय। उस शादी में तीन सौ आदमियो की बरात आई थी। उन दिनो बरात के चार दिन ठहरने का रिवाज था। देश की राजनीति की तरह समाज और जाति की समाज-नीति और जातिनीति भी होती है और इन नीतियो मे भी इस तरह की उखाड़-पछाड़ चलती रहती है जिस तरह राजनीति में। अतरौली जहां से रामदेवी की बड़ी लड़की की शादी हुई अपनी जाति-नीति रखती थी। जाति का एक दल रामदेवी के भाई के खिलाफ था। उस दल ने बरातियों को आमतौर से और दूल्हे के पिता को खास तौर से बहका और भड़का दिया। बहकाया-भड़काया इस बात पर कि रामदेवी के मामा इस योग्य नही है कि बिरादरी को खाना परोस सके। नतीजा यह हुआ कि बराती बिगड़ गये और अड़ गये कि जबतक रामदेवी के भाई अपने मामा को घर से अलग न करेंगे तबतक शादी न होगी, बरात लौट जायगी। यह सुनकर रामदेवी बाई घबड़ा गयी, उन्होंने अपने भाई से सलाह ली। उनके मामा भी घबरा उठे। उन्होंने अपने भानजे-भानजी को सलाह दी कि

उनके लिये यही ठीक है कि वह घर छोड़ कर चल दें और शादी को बिना किसी झंझट के हो जाने दें, पर यह बात रामदेवी के भाई को बिलकुल न जंची। भाई इस बात पर डट गये कि चाहे शादी हो या न हो मामा घर से नही निकाले जायेगे। मामा पर झूठे इलजाम लगाकर अतरौली की विरादरी का जो दल हमें दबाना चाहता है उसकी जीत हम नहीं होने देंगे। अपने भानजे की यह बात सुनकर मामा बहुत घबराये, वह अपने भानजे की हिम्मत से खुश थे, पर उनके सामने बड़ा तूफान था, बड़ी बदनामी थी, बरात लौट जाने से गांव भर में बदनामी फैलती। मामा के बहुत समझाने बुझाने पर भी रामदेवी का भाई टस से मस न हुआ। रामदेवीबाई ने आखिर अपने भाई से कहा मैं कुछ नही जानती जो तुम करो, मै साथ हूं। भाई ने यह सुनकर मकान का दरवाजा बन्द कर दिया, दो घण्टे की मजबूती के बाद बरात की तरफ़ से सुलह के पैगाम आने लगे। आखिर बरात और अतरौली की बिरादरी ने मिलकर यह फैसला किया कि अगर मामा एक थाली मदिर में चढ़ा दें तो बरात को उनके हाथ से खाने में कोई ऐतराज न होगा। भाई इतने पर भी राजी न थे, पर जब और साथी इस फैसले को ठीक समझे तो उन्होंने मान लिया और फिर शादी हो गई। इस घटना ने भाई-बहन को और ज्यादा गाढे रिश्ते में बांध दिया। ऐसे मौके पर रामदेवीबाई का अपने भाई का साथ देना मामूली बात न थी। अपनी लड़की की शादी के वक्त शायद ही कोई मां इतनी हिम्मत दिखा सकती है। अगर रामदेवी बाई में इतनी हिम्मत न होती तो आगे जो वह समाज और देश के मैदान में कूद कर कर सकी वैसा न कर पाती।

हम ऊपर लिख चुके है, रामदेवीबाई का हृदय इतना कमजोर था कि भाई और पिता के मरने पर उनके लिये कफन आ गया था, फिर उनमें इस तरह की हिम्मत कहा से आ गई कि वह अपनी लड़की की शादी के वक्त बरात लौट जाने की जोखम उठाने को तैयार हो गई और अपने आगे के जीवन में ऐसे काम कर सकी जिनकी आशा इतने कमजोर हृदय की महिला से नही की जा सकती।

वे कारण ये है :

रामदेवी वाई का तीन वरस का वालक जैनेन्द्र वहुत वीमार था। उसकी वीमारी की हालत मे एक भिखारी घर में आ पहुंचा। रामदेवी के भाई घर पर न थे। उसने वीमार वच्चे को देखकर अच्छे होने की असीस दी। इस असीस के वदले रामदेवी ने उसको चार पूडिया दे दीं। वह वाई की कमजोरी भांप गया। उसने वच्चे का हाथ देखने की वात कही। हाथ देखकर उसने कुछ अच्छी वाते वतलाई। उन वातो के वदले उसे एक दुअन्नी मिल गई। दो-चार वढिया वाते वता कर एक धोती इनाम में पा गया। उसका अव भी पेट न भरा, एक रुपया और चाहता था, इतने मे रामदेवी का भाई आ गया। उसने उसको भी आँखें दिखा कर प्रभावित करना चाहा। पर कर न सका। अव दोनो हाथ खाली दिखाकर और उनको मल कर वाजरे के दाने गिराये। वोला तेरे घरमे वरकत होगी, ला निकाल एक रुपया। रामदेवीने अपने भाई की तरफ देखा। भाई की मन्शा नही थी कि उसको रुपया दिया जाय। वह इशारा समझ गई और उस से वोली तुम फिर आना, जव हमारा वच्चा अच्छा हो जायगा, हम एक रुपया नही, पांच रुपये तुम्हे देंगे। भिखारी समझ गया और चल दिया। रामदेवीवाई एकदिन भाई से वोली साधु अच्छा था उसकी असीस का फल भला हुआ, वच्चा विलकुल अच्छा हो गया। अगर वह आयेगा तो मै जरूर पांच रुपये दूगी। भाई यह सुनकर वोले, पाच नही दस देने चाहिये, पर देने उसे चाहिये जिसने तुम्हारे वच्चे को अच्छा किया और मकान के कोने मे रखे हुये डण्डे की तरफ इशारा करके वोले कि असल मे तो तुम्हारे वच्चे को इस डण्डेने अच्छा किया है। और जो पाच-दस तुम्हें देने हों, इस डण्डे को दो। रामदेवीवाई कुछ न समझ पाई। वह वोली, इसका मतलव ?

भाई वोला, मतलव यह कि, लो यह अपनी धोती, लो यह अपनी-दुअन्नी और रही वह चार पूरी जो तुमने साधु को दी थी वे पहुंच गई तुम्हारे गाय के पेट में। यह सव काम इसी डण्डे ने किये है जो उस कोने में रखा है। रामदेवी वाई वोली, तुमने उस साधु को पीटा था ? भाई वोला, साधु इतना दमदार नही था कि उसे पीटने की नौवत आती। उसने डंडा देखकर ही सव वात सच सच वता दी थी। पूरिया ले जाने के

लिये वह मचलता रहा पर हमने उसको उनका भी पात्र नहीं समझा। यह सुनकर रामदेवीबाई हंस दीं और बोलीं, पूरी न लेते तो ठीक था। उनका भाई बोला, पूरी न लेता तो बहुत बड़ी भूल होती। रामदेवीबाई अपने भाई की यह बात भी मान गईं। इस घटना का इतना गहरा असर उनके दिल पर हुआ कि वह एकदम बदल गईं। उसके कुछ ही दिनों बाद उन्होंने वह काम कर दिखाया जिसे देखकर पड़ोसी दांत तले उंगली दाब कर रह गये।

वह घटना यह थी—

एक दिन दोपहर के वक्त एक भिखारिन आई, वह सीधी अन्दर घुसी चली आई। अन्दर आकर कमरे में चारों तरफ नजर डालने लगी। रामदेवीबाई उठी और उसको निकल जाने के लिये कहा, पर वह राजी से न निकली। आखिर ढकेल कर उसे निकाला गया। वह चली गई, बात आई गई हो गई। गर्मियों के दिन थे। भाई भावज और तीनों बच्चे बाहर आगन में सोये थे। रामदेवीबाई कमरे के दरवाजे मे चारपाई अड़ा कर सोई थी। रात को एक बजे उनको कमरे में ऐसा मालूम हुआ कि कुत्ता है। उन्होंने उसे दुत्कारा। चारपाई के नीचे होकर निकलने लगा। रामदेवी बाई ताड़ गईं, यह कुत्ता नहीं, आदमी है। बस जैसे ही वह निकला, उन्होंने उस चोर का हाथ पकड़ लिया और चोर चोर चिल्लाना शुरू कर दिया। पड़ोसी जाग गये, पर पड़ौसी निकले निरे बाबू लोग। हाथ में लकडी लेकर अपने आंगन में से मकान की दीवार पर मारने लगे और अभी आते हैं, अभी आते है कह चिल्लाने लगे। जब चोर हाथ न छुटा सका तो उसने रामदेवी के हाथ में काट लिया। पकड़ ढीली हो गई और चोर भाग गया। इस हू-हक्कड़ मे उनकी भौजाई जाग गई वह इतनी डरी हुई थी कि मदद करने की जगह आंगन में सोये अपने पति के ऊपर गिर पड़ी। तब कहीं वह साहब जागे। अबतक चोर भाग चुका था। रामदेवीबाई की सूझ और हिम्मत का नतीजा यह निकला कि चोर कुछ न ले जा सका। अब रामदेवीबाई की हिम्मत और बढ़ गई।

रामदेवी के भाई नौकर थे। उनको १५ दिन की छुट्टी मिली। उस छुट्टी में ही वे तीरथ कर आना चाहते थे। जाना तय हो गया। जहां वह नौकर थे, फिरोजाबाद वस्ती उस से छः मील दूर थी। फिरोजाबाद में रामदेवी बाई के कुछ रिश्तेदार रहते थे। यह तय हुआ कि फिरोजाबाद जाकर अपने रिश्तेदारों से मिला जाय। यात्रा पर जाने से पहले फिरोजाबाद पहुंच गये। रिश्तेदारों ने सलाह दी कि यात्रा जाने से पहले किसी ज्योतिषी से शुभ दिन निकलवा लेना चाहिये। यह सुनकर रामदेवी के भाई बोले कि उनके पास सिर्फ १५ दिन है और १५ दिन में ही यात्रा पूरी करनी है इसलिये ज्योतिषी के पास चलना बेकार है। उनके भाई मजबूत दिल के थे, शगुन मे विश्वास नही करते थे। रामदेवीबाई भी अब काफी पक्की हो चुकी थी और पूरी नहीं तो वहुत कुछ अपने भाई के खयाल की बन गई थीं। उन्होंने यही ठीक समझा कि ज्योतिषी के पास न जाया जाय, पर रिश्तेदार न माने और ज्योतिषी के पास ले गये। ज्योतिषी ने अपना पोथा देखकर यह बताया कि आठ रोज कोई शगुन नही बनता और कल की चाला है ही नहीं। इस पर उसके भाई बोले तो फिर कल का दिन क्यों खराब किया जाय? हुआ वही, वह कल ही तीर्थ के लिये चल पड़े।

जिस रेल से वे सवार हुए वह पैसेंजर थी। जहां से वे हुए वहां तेज गाड़ियां ठहरती न थी। होनहार की बात कि बैठने के लिये रेल का ऐसा डब्बा मिल गया, जिसमें जनाना और मर्दाना एक दूसरे से लगे थे। रामदेवी और तीनो बच्चे जनाना डब्बे मे बैठ गये और पास के डब्बे में उनके भाई बैठ गये। जिस डब्बे में उनके भाई थे उसमें सिर्फ एक मुसाफिर और था। गाड़ी चल दी। जब विन्ध्याचल स्टेशन आने को हुआ तब न जाने रामदेवीबाई को क्या सूझा कि वे तीन बरस के जैनेन्द्र को चलती ट्रेन में अपने भाई को देने लगी, भाई को आवाज दी। भाई ने आगा-पीछा सोचे बिना जैनेन्द्र को ले लिया। इस बात पर भाई के पास बैठा मुसाफिर बुरी तरह बिगड़ा। उसका बिगड़ना मुहब्बत का था बरदाश्त कर लिया गया। थोड़ी देर में विन्ध्याचल स्टेशन आ गया। भाई बच्चे को फिर वापस देने के लिये

विन्ध्याचल स्टेशन पर उतरा और उस को उसकी मां के सुपुर्द कर दिया। थोड़ी देर रामदेवी और भाई में बात होती रही। इतने में गाड़ी चल दी। जब रामदेवी का भाई अपने डब्बे में पहुंचा तो उसके ओढ़ने की अण्डी वहां मौजूद न थी। साथी मुसाफिर उसे लेकर चल दिया था। वह विन्ध्याचल उतर गया था। अण्डी खोने की बात जैसे ही रामदेवी को मालूम हुई, उन्हे ज्योतिषी की याद हो आई और भाई से बोली, देखा, तुम ज्योतिष को नही मानते अब तीस रुपयो की अण्डी खो दी या नही। भाई हिम्मत वाला था, बोला, बहन, अण्डी खोई नही है, बड़ा अच्छा शगुन हुआ है, अगला स्टेशन मिर्जापुर है। हम सब वही उतरेगे। तुम सब उतरने के लिये तैयार हो जाओ, अण्डी हमें जरूर मिलेगी। और साथ साथ तेज गाड़ी, जो पीछे आती है, मिर्जापुर बड़ा स्टेशन है वहा वह ठहरेगी। उसमें बैठकर इस गाड़ी से पहले हम वहा पहुच जायेंगे जहां पहुचना है। रामदेवीबाई एक दबी हंसी हस दीं। हुआ वही जो भाई ने कहा था। मिर्जापुर से छः आने में वापिसी इक्का किया गया। और रामदेवीबाईके भाई अकेले विन्ध्याचल गये, वहा से अण्डी ले आये और फिर तेज गाड़ी पकड़ ली। गाड़ी मे बैठकर बहन से बोले, देखा, बहन कैसे अच्छे शगुन से निकले थे, खोई चीज मिल गई। रामदेवीबाई ने बात गाठ बांध ली—शगुन कुछ नही होते, आदमी के मन की मजबूती और कमजोरी ही सब कुछ है। इसी यात्रा में दो घटनाएं और हुईं। एक यह कि तीरथ मे पहुच कर ऐसा हुआ कि रामदेवीबाई की भौजाई तीन दिन तक यात्रा नही कर सकी। इस वजह से वहा तीन दिन और रुकना पड़ा। इसको लेकर उनके भाई बोले, देखो, कैसे अच्छे शगुन से निकले है कि तीन दिन की जगह ५ दिन तीरथ पर रहने को मिल गये। बनारस से लौटते वक्त मुगलसराय के वेटिंग रूम मे रामदेवीबाई की छोटी लडकी पाव में पहनने की पाजेब छोड़ आई। सब लोग रेल में आकर बैठ गये। रेल चलने के कुछ ही देर पहले इस बात का पता चला। रामदेवीबाई अपने भाई से बोली, शगुन से न निकलने पर कुछ न कुछ नुकसान होकर रहेगा। भाई बोले, वह क्या? वह बोली—छोटी लडकी अपनी पाजेब वेटिंगरूम मे छोड़ आई। भाई विश्वास के साथ बोले, हम बड़े शगुन से निकले है, पाजेब मिलेगी, हम अभी जाते है। जैसे ही वह

वेटिंगरूम में पहुचे कि पाजेब झाड़ू लगाने वाली मेहतरानी हाथ में लिये खड़ी मिली, वह उसे दो पैसे इनाम देकर ले आये और वहन के हाथ में दे दी। इस घटना ने रामदेवी वाई के दिल को वहुत पक्का कर दिया और साथ साथ भाई पर उनकी वेहद श्रद्धा हो गई।

रामदेवी को भाई के घर मे वे सव अधिकार प्राप्त थे जिनको पाने की एक वाई के मन मे इच्छा हो सकती है। भाई ने रामदेवी को वहन समझा ही नही, जव समझा तव मां समझा और राम्रदेवीवाई ने भी हर तरह वही हक अदा किया जो एक मा को करना चाहिए। भाई के घर में एक नौकर था पर दफ्तर के और नौकरो से भी काम लिया जा सकता था और लिया जाता था। घर के इन्तजाम का सारा भार रामदेवीवाई पर था। एक दिन का जिक्र है किसी वजह से घर में खाना वनाने के लिये लकड़ी विलकुल न रही। रामदेवीवाई ने एक दो वार भाई से लकड़ियों का जिक्र किया, भाई ने कुछ ध्यान न दिया। आखिर एक दिन खाना वनना वन्द कर दिया गया। जव भाई घर में आये तो तीन वरस का जैनेन्द्र रोता हुआ मिला। रोने का कारण पूछा तो वह वोला अम्मा ने रोटी नही वनाई, भाई ने आगे कुछ न पूछा और वच्चे को साथ लेकर घर भर के लिये पूरी और मिठाई खरीद लाये। उस दिन घर मे पूरा त्यौहार मना। रामदेवीवाई यह देख क्रोधभरी हंसी हंस दी। उनके भाई वोल उठे, अगर लकड़ी मैं नही लाया था तो नौकर से क्यो नही मंगा ली गई। उस दिन से रामदेवीवाई ने समझ लिया कि उनके भाई घर के काम में कोई दखल नही देना चाहते। अव घर की अर्थ व्यवस्था का सारा भार अपने आप उनपर आ गया। घर मे एकता वनाये रखने की यही सव से वडी कला है। जिस घर का एक स्वार्थ हो वहा सुख वसेगा ही। इसलिये रामदेवीवाई के घर में सुख-शाति दोनो निवास करते थे।

जनवरी सन् १९१० में भाई ने नौकरी छोड़ दी। नौकरी छोडन का पता रामदेवीवाई को फरवरी के पहले हफ्ते में लगा क्यों कि उन दिनों भाई का सारा कुटुंव रामदेवी वाई के साथ अतरौली था और उनके भाई फतह-

पुर में नौकर थे। नौकरी छोड़ देने का रामदेवीबाई ने हल्का-सा दुख तो माना पर प्रवन्ध की योग्यता पर भरोसा कर उस दुख को सह लिया।

फरवरी सन् १९१० के आखिरी हफ्ते में वह अपने भाई के साथ तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़ी। घर का प्रबन्ध अपनी मौसी के हाथ सौंप गईं।

उन दिनो तत्त्व प्रकाशनी सभा इटावा का इटावा में जलसा था। सवसे पहले ये दोनो बहन भाई वही पहुचे। उस सभा मे एक यात्रा-संघ वना। उस संघ ने अपना यह कार्यक्रम बनाया कि गुरुकुल की स्थापना के लिये ऐसे काम करने वालों की खोज की जाय जो नाम-मात्र के वेतन पर काम कर सके। इसके लिये तीर्थ-स्थानों मे होते हुए और शहरो को भी रखा जाय। इस संघ मे १९ आदमी शामिल हुए। उन १९ में भाई अजित प्रसादजी, लखनऊ, अर्जुनलालजी सेठी, जयपुर भी शामिल थे। भाई अजितप्रसादजी की लड़की सरला और सेठी अर्जुनलालजी का लड़का प्रकाशचन्द्र भी था, उसकी उम्र सात-आठ के लगभग रही होगी। इस सघ की कहानी वड़े मार्के की है, वह अपना अलग महत्त्व रखती है। इसलिये यह कभी अलग ही लिखी जायगी। यहा तो सिर्फ उसका इतना ही जिक्र किया जायगा जितना इसका रामदेवीबाई से संवंध है।

रामदेवीवाई इस सघ की वाइयों से घुलमिल कर एक हो गई और वहुत जल्दी ही वाइयां एक कुटुब की मालूम होने लगी। इस यात्रा में वनारस, शिखरजी, जवलपुर और मैसूर के सव तीर्थ, श्रमणवेलगोल कारकेल वगैरह और पश्चिमी तट के मूडविद्री और ववई, नासिक, गजपंथा, सोनागिर वगैरह सव शामिल थे। इस यात्रा मे रेल का किराया, खाना खर्च सव मिला कर एक आदमी पीछे ५६ रुपये कुछ आने हुए थे। सारा खर्च एक जगह से होता था। सव मे वरावर वरावर वांट दिया जाता था।

वाइयो मे जवलपुर तक हलका हलका पर्दा रहा पर जैसे ही वह प्रान्त शुरू हुआ जहां वाइयां पर्दा नही करती, संघ की सव वाइयो ने पर्दा छोड़ दिया। श्रमणवेलगुल मे वाइयो ने वह काम किया जिसको करने में

एक़बार मर्द भी हिचक जाते। वहां महासभा* का जल्सा था और होनहार कि जल्से के मौके पर वारिश आ गई। जो चट्टियाँ दस रुपये किराये पर ली गई थी वे बारिश को जरा न रोक सकीं। यह हालत देखकर संघ के उन्नीसो आदमी पास ही खड़े खाली तम्बू मे जा घुसे और उस पर कब्जा कर लिया। यह असल में सेठ माणिकचन्द्रजी, बम्बई वालो के लिये खड़ा किया गया था। सेठजी के साथ मगनबहन भी थी।

श्रमणबेलगुल के प्रबन्धकर्त्ताओं ने संघ वालों से यह तम्बू लेना चाहा। उन्होंने देने से इन्कार कर दिया। अब उनके हाथ में एक तरकीब रह गई कि तम्बू गिरा दिया जाय और इस तरह इन सबको निकाल बाहर किया जाय। जब यह नौबत आई तब रामदेवीबाई ने यह सलाह दी कि जब हम सबने पर्दा छोड़ दिया है तब क्यो न तम्बू गिराने वालो का मुकाबला किया जाय? रामदेवीबाई की यह तजबीज सब मर्दों को पसन्द आई और मर्द सबके सब बाइयो को अकेला छोड़ पास के छोटे पहाडपर जा बैठे। जैसे तम्बू गिराने के लिये मजदूरों ने आकर खूटे उखाड़ने शुरू किये सब बाइया उन लकडियो को लेकर, जो उन्होंने शिखरजी में खरीदी थीं, उन मजदूरो पर दौड़ पड़ी। मजदूर बिचारे क्या करते, तम्बू छोड़ भाग गये और एक दो खूटे जो उन्होने उखाड़े थे उनको बाइयों ने टेढे-सीधे ठोंक लिया। यह देखकर जो साहब मजदूर लेकर आये थे उनमें भी भलमनसियत जाग गई और उन्होने मजदूरो को बुला कर उन खूटों को ठीक से गडवा दिया और फिर मेले के आखिर तक उस तम्बू पर संघ का ही कब्जा रहा। एक वार मगनबहन खुद उस तम्बू में आई और बोली कि उन्होने तो यह तम्बू शास्त्र सभा के लिये रखा था। उस पर सब बाइयां बोल उठी, हां, हमारे रहते शास्त्र-सभा इसमे बहुत अच्छी तरह हो सकती है और हमारे साथ शास्त्र पढ़ने वाले अच्छे से अच्छे पंडित मौजूद है। यह सुन कर, मगन बहन हंस दीं और वापिस चली गई।

श्रमणबेलगुल से आगे इस सघ के दो टुकडे हो गये। एक मूडबिद्री होता हुआ जहाज के रास्ते बम्बई पहुचा, दूसरा रेल के रास्ते बेलगाव की

---

* दिगम्बर जैन महासभा।

तरफ चल दिया। जो टुकड़ी मूड़बिद्री की तरफ चली, रामदेवीवाई उसी में थी। श्रमणवेलगुल से मूडबिद्री तक बैलगाड़ियो का रास्ता था। रास्ते में कई अनोखी घटनायें हुई पर उनका सम्बन्ध रामदेवीजी से न होने से छोड़ी जाती है। वहा से सघ मूडविद्री पहुंचा, मूडबिद्री से मंगलोर पहुंचा, मंगलोर से बम्बई के लिये जहाज में बैठना था, यह सबको मालूम था कि जहाज मे कुये का पानी किसी तरह नही मिल सकता और यात्रा चार रोज की थी, जहाज लद्दू जहाज था। जहा ठहरता कम से कम दो घण्टे और ज्यादा से ज्यादा छ घण्टे ले लेता। रामदेवीबाई और उनके भाई दोनो नल का पानी न पीते थे। इसलिये एक मटका कुए का पानी साथ रखा गया। मगलोर मे जहाज बिलकुल किनारे नही आता था। वहाँ से एक मोटर बोट सवारियों को जहाज तक ले जाती थी। रामदेवीबाई अपने भाई के साथ उस मोटर बोटमें सवार हुई। पीने के पानी का घड़ा साथ था। मोटर बोट अभीतक एक फर्लांग भी न चल पाई थी कि हवा खूब जोरों की चलने लगी और मोटरबोट इस तरह हिलने लगी मानो वह झूले मे बड़े बड़े झोटे ले रही हो। इस हिलन डुलन से सब मुसाफिरो के चेहरे उदास हो गये। रामदेवी बाई घबरा गई। थोडी देर में समुद्र का पानी जोर के थपेड़े मारने लगा। और उछल उछल कर मोटरबोट में आने लगा। अब मुसाफिरो की घबराहट और बढ़ी। मोटर बोट के आदमी तेजी के साथ पानी उलीचने में जुट गये। यह सब देख रामदेवीबाई का चेहरा उतर गया। पर जैसे ही उनकी नजर अपने भाई पर पड़ी वैसे ही उनकी सारी उदासी भाग गई। उनके भाई हस हंस कर उस हवा का और उस पानी की बौछार का आनन्द ले रहे थे। जहाज में बैठकर जब रामदेवीबाई ने अपने भाई से मोटरबोट में हसने का कारण पूछा तो उन्होने बताया कि उनकी निगाह हवा और पानी की बौछार पर न थी उनकी निगाह उन मल्लाहो पर थी जो मोटर बोट चला रहे थे, और जब वह सब खुश थे तब डरने की कोई बात न थी। अगर मोटरबोट को कोई खतरा होता तो सबसे पहले उदासी मल्लाहो के चेहरे पर आती, यह सुनकर रामदेवीबाई बोली, तुमने मल्लाहो के चेहरों को अपना माझी माना और मैंने तुम्हारे चेहरे को अपना माझी माना। तुम्हे देखकर मैंने समझ लिया कि डरने की कोई बात नही।

हां, तो यह मोटरबोट आधघण्टे में जहाज तक पहुंच गयी और जहाज पर जब सीढ़ियों के जरिये संघ चढ़ने लगा तो संघ के लोग ऐसे हिल रहे थे मानों झूले पर बैठे हों। ज्यों त्यों कर संघ के सब सात आदमी जहाज पर पहुंच गये और जब पानी का घड़ा ऊपर चढ़ाने लगे तो तीसरी सीढ़ी से वह घड़ा गिर गया और वहीं फूट गया। संघ के सब साथी घबड़ा उठे! पर रामदेवीबाई जरा भी न घबड़ाई।

जहाज थोड़ी देर में चल दिया। अभी एक मील भी न चला होगा कि रामदेवीबाई को उल्टी होना शुरू हो गई। संघ की दो बाइयों का भी यही हाल हुआ। मर्दों में से किसी को कै नहीं हुई। रामदेवीबाई मंगलोर से बम्बई तक उल्टा मुंह किये लेटी रहीं, वे समुद्र की तरफ देख ही नहीं सकती थीं, देखते ही उल्टी आने लगती। रास्ते में जहाज मारमागोआ के किनारे पर लगा। वहां बड़ी मुश्किल से अेक गिलास कुए का पानी मिल सका और वह रामदेवीबाई के हिस्से में आया, और थोड़ा सा पानी उसीमें से उनके भाई को भी मिल गया। दूसरी बार जहाज गोवा में किनारे लगा। वहां जहाज को काफी देर ठहरना था, इसलिये जहाज से सब यात्री किनारेपर आ गये। पास ही एक पहाड़ी कुआ था, उस कुए में पानी बिलकुल नहीं था। बहुत नीचे बूंद बूंद करके पानी झरता था, उसके नीचे लोटा लगाने से पांच सात मिनट में लोटा भर जाता था। इतना अच्छा था कि पानी पीने वालों की तादाद बीस-पच्चीस से ज्यादा न थी। बारीबारी से लोगों का नम्बर आता था। जब संघ का नम्बर आया तो हममें से एक सूरजमल छावड़ा नामी सज्जन लोटा लेकर कुए पर पहुंचे। उन्होंने ज्यों त्यों कर पौन लोटा पानी बाहर खींचा और उसको छान कर रामदेवीबाई को दिया। वह अभी एक घूंट भी न पी पाई थीं कि एक झगड़ा खड़ा हो गया और वह झगड़ा यह कि छावड़ा जी ने उस छन्ने का बोवन जिसको बिनछन नाम से पुकारते हैं कुए में डाल दिया। बस अब क्या था, जहाज के मुसाफिर, वहां के लोग सब गालियां देते हुए छावड़ा जी को मारने दौड़े। इसी झगड़े में रामदेवीबाई का पानी खिड गया।

और वे एक घूट भी न पी पाईं। पन्द्रह-बीस मिनट में वह झगड़ा शान्त हुआ। छावड़ाजी को माफी मांगनी पड़ी और फिर बड़ी मुश्किल से रामदेवीवाई के भाई को पानी खीचने की इजाजत मिली, और फिर ज्यों त्यों कर डेढ़ लोटा पानी बड़ी मुश्किल से मिल पाया। वहां से जहाज चला तो बम्बई किनारे लगा। उस वक्त रात के आठ बजे थे। रामदेवीवाई जहाज से नीचे उतर आईं और प्लेटफॉर्म पर आ गईं। पर वे अपने भाई से बोली, मालूम तो ऐसा होता है कि प्लेटफॉर्म पत्थर का है पर हिल ऐसे ही रहा है जैसे जहाज हिलता था। जवाब मे भाई ने कहा कि उसको भी ऐसा ही मालूम होता है। यह हिलने की हालत हीरावाग धर्मशाला तक रही। दूसरे दिन आठ-नौ वजे बाद धर्मशाला का हिलना बन्द हुआ। रामदेवोवाई शाम तक बिलकुल ठीक हो गई। दो तीन दिन बम्बई की जी भर सैर की, वहां से आगरे के लिये चल पड़ी। यहां से संघ और भी बिखरा। पांच आदमी जयपुर की तरफ चले और रामदेवीवाई और उनके भाई आगरे की तरफ। रास्ते के सब तीर्थो को देखते हुए रामदेवीबाई ग्वालियर पहुंची। ग्वालियर के पास पनहरा नाम का एक स्थान है, वहां भी कोई मन्दिर था, रामदेवी-वाई वहां भी गईं। उनके भाई भी साथ थे। पनहरा मन्दिर के नीचे एक भौंरा यानी गुफा थी। उसमे कुछ मूर्तियां थी। उनके दर्शन की सूझी। वहां के मन्दिर का एक माली तेल की जलती हुई बत्ती लेकर उस गुफा मे आगे आगे चला। उस माली के पीछे रामदेवीवाई का भाई और सबके पीछे थी रामदेवीवाई। गुफा थी तो बहुत ही छोटी शायद तीन चार गज की होगी। पर उसके अन्दर दम घुटने की जो तकलीफ हुई उससे ऐसा मालूम हुआ कि गुफा कई मील लम्बी है। खैर ज्यो त्यो कर उस जगह पहुचे जहां छोटी सी कोठरी थी और उसमे दस पांच मूर्तियां थी। उनमे कोई सावित न थी। कही न कही से जरूर खण्डित थी। रामदेवीवाई के भाई ने वहां ज्यादा देर ठहरना ठीक न समझा। एक मिनिट से भी कम मे वाहर निकल दिये और अब सब से आगे रामदेवीवाई, उनके पीछे उनका भाई और सबके पीछे था माली। वाहर आने पर दम मे दम आया। माली को एक रुपया देकर मन्दिर से विदा ली। मन्दिर से रेल का स्टेशन

एक मील से कम था। अप्रैल का महीना था, रास्ता रेतीला था, रेत एकदम गरम हो गई थी। रामदेवीवाई नंगे पांव थी, उनके भाई रस्सी के तलेवाला किरमिच का जूता पहने थे, जो उन दिनों छ. आने मे मिलता था। थोड़ी ही दूर चले होंगे कि रामदेवीवाई के पाव इतनी बुरी तरह जलने लगे कि गिरने को हो गई। भाई ने अपने जूते देने चाहे पर उन्होंने लेने से इन्कार कर दिया। आखिर यह ठहरा कि एक एक जूता बांट लिया जाय और इस पर रामदेवीवाई राजी हो गई। इससे भी काम न चला तब रामदेवीवाई ने अपना दुपट्टा अपने पाव पर लपेटा और भाई ने अपनी अचकन उतार कर वाधी। ज्यो त्यो कर स्टेशन की ओर बढ़े। जब स्टेशन एक फर्लांग रह गया तब गाड़ी आ पहुंची और गाड़ी मिलने की कोई आशा न रहीं। ज्यो ही रेल के मुसाफिरों ने उनको इस तरह आते देखा, उनको दया आ गई। उन्होने गार्ड से कहा, गाड़ी तब तक रुकी रही जबतक रामदेवीवाई और उनके भाई रेल के डिब्बे में न बैठ गये। गाड़ी के डिब्बे में बैठकर जब रामदेवीवाई ने अपना पाव खोला तब मालूम हुआ तीन छाले पड़ गये थे। भाई के पाँव मे छाला नही पड़ा था। ग्वालियर से चलकर आगरा शहर देखा। दो तीन दिन इसमे लगे और फिर अपने गांव अतरौली पहुँच गई।

यह बात पहले कही जा चुकी है कि रामदेवीवाई अपने बच्चो समेत अपने भाई–भावज के यहां रहती थी। उनका एक भतीजा था जो उन दिनों यानी सन् १९१० मे तीन वरस का था। यों कुल मिलाकर सब कुटुंब के सात आदमी थे। इनकी आर्थिक व्यवस्था भाई के हाथ में थी और घर की सब सम्हाल रामदेवीवाई के हाथ में थी। यह भी पहले कहा जा चुका है कि भाई ने जनवरी सन् १९१० में नौकरी छोड़ दी थी। एक तरह से वे समाज-सेवा के मैदान में कूद पडे थे। भाई का घराना इतना पैसे वाला न था कि अगर कुछ भी न किया जाय तो दस-पांच वरस काम चल सके इसलिये रामदेवीवाई चिन्ता मे पड़ गईं, अब क्या होगा? तीन चार वरस में रामदेवीवाई ने इतनी योग्यता हासिल कर ली थी कि वह अपने पर भरोसा कर सके और इस योग्यता के बल पर उन्होंने न अपने भाई को

कुछ कहा और न उनसे यह पूछा कि आगे क्या इरादा है। तीर्थ-यात्रा से लौटने के पन्द्रह दिन बाद ही रामदेवीबाई का भाई जयपुर चल दिया और अब सब बोझ उन पर आ पड़ा।

भाई के चार मकान थे। तीन किराये पर उठे हुए थे। एक मे कुटुंब की रिहायश थी। रिहायशवाला मकान अधबना था। आगे का हिस्सा कच्चा और पुराना था। उसका नक्शा रामदेवीबाई के पिताजी तैयार करके छोड़ गये थे। पर उस नक्शे के मुताबिक मकान बनाने के लिये जितने धन की आवश्यकता थी वह रामदेवीबाई के पास न था। पाठको को यह तो समझ ही लेना चाहिये कि भाई की तरफ से रामदेवीबाई को सब तरह के अधिकार हासिल थे। एक तरह से वह अपने भाई की बड़ी बहन न होकर बड़ा भाई थी। इसलिये वह जो मुनासिब समझती, करती और कर लेती। उन्होने तीनों मकान बेच डाले और उसमें से जो धन उनसे हासिल हुआ उससे रहने का मकान अपने पिताजी के नक्शे के मुताबिक खड़ा कर दिया जो आज के दिन तक मौजूद है।

रामदेवी ने अब अपने भाई के भरोसे रहना एकदम छोड दिया। उनकी दोनो लड़कियों की शादी हो चुकी थी। पर अब भी उन्ही के साथ थी। सब मिलाकर छः आदमियो का बोझ उनके सर था। घबड़ाना, शिकायत करना या किसी से माग कर, उधार लेकर जीवन बिताना उन्हे पसन्द न था। हाथ से काम करनेवाले और पाव पर भरोसा करनेवाले कम शिकायत करते है। और मागने और भीख मागने की तो वे कभी सोच ही नही सकते। दोनो कुल के इन गहरे संस्कारो का यह नतीजा हुआ कि उन्होने कुछ घोडे खरीदे और इक्के चलाने का रोजगार शुरू कर दिया। थोड़ी सी पूजी में आमदनी का यह सिलसिला जारी हो गया कि घर का काम बहुत अच्छी तरह चलने लगा। बाप के घराने की धाक मोहल्ले, बिरादरी और शहर मे फिर से जम गई। अपने भौजाई भतीजे को कभी यह अनुभव न होने दिया कि वे यह समझें कि उसका पति और उसका बाप उनकी तरफ से बेपरवाह है।

अव यह समझ में नही आता कि यह कहना कहां तक ठीक होगा कि रामदेवीवाई वहन की हैसियत से भाई के आश्रय में थीं या योग्य वहन की हैसियत से अपने भाई का कुटुंव सम्हाल रही थीं। जहां तक हमें पता है उनका भाई अपने आपको अपनी वहन का काफी ऋणी समझता रहा है और आज भी वैसा समझता है।

मई सन् १० से नवम्वर सन् १० तक भाई की एक दो से ज्यादा चिट्ठियां उनको नही मिली। उन चिट्ठियों मे ऐसी कोई वात न थी जिसका हाल यहां वताया जाय। हां, नवम्वर के महीने में जैसे ही दूसरे भतीजे का जन्म हुआ वैसे ही भाई की एक चिट्ठी मिली जिसमें यह लिखा हुआ था कि उन्होंने अपना जीवन समाज को अर्पण कर दिया है और अव उनसे किसी तरह की उम्मीद न उन को रखनी चाहिये और न उनकी भौजाई को। इस चिट्ठी का असर रामदेवीवाई पर क्या पड़ा यह कभी नही मालूम हो पाया। उसकी वजह यह रही हो कि उन्होंने तीर्थयात्रा में साथ रहकर भाई के मन को अच्छी तरह जान लिया था और मई के महीने में जव भाई जयपुर चल दिया था तव उन्होंने यह सव ताड़ लिया था जो अचानक नवम्वर में उनके सिर पर आ पड़ा। उन्होंने यह समझ कर अपना जीवन नये सिरे से ढालना शुरू कर दिया था और यह समझ लिया था कि उनके अपने और अपने पिता के परिवार की सारी जिम्मेवारी उन्हें खुद ही सम्हालनी पड़ेगी।

रामदेवीवाई के भाई के एक मित्र थे लाला गेंदनलाल जी। लाला गेंदनलाल जी के दो लड़के थे और दो लड़कियां। लड़के लड़कियो की माता का देहान्त हो चुका था। लाला गेंदनलाल जी से रामदेवीवाई के भाई की मित्रता हुई थी फतहपुर मे, जहां लाला गेंदनलाल म्युनिसिपल सेक्रेटरी थे। यह मित्रता धीरे धीरे भाईचारे में वदल गई।

जैसे ही रामदेवीवाई के भाई ने समाज सेवा के मैदान में कदम रखा वैसे ही कुछ दिनो के वाद लाला गेंदनलाल जी उनसे जयपुर में आ मिले और उनके साथ काम करने लगे। लाला गेंदनलाल के दोनो लड़के अर्जुनलाल सेठी की शिक्षा समिति के छात्रालय मे दाखिल हो गये। दोनों लड़कियां

सेठी जी के घर रहने लगीं और शिक्षा समिति के बालिका विद्यालय में पढने लगी। सबसे बड़े लड़के का नाम दीपचन्द, जो हिन्दुस्तानी सरकार का मजिस्ट्रेट रह कर अब रिटायर्ड हो गया और देहरादून में रहता है। दूसरे लड़के का नाम प्रीतचन्द, वह है तो फर्स्ट क्लास इन्जिनियर पर शायद कहीं कानपुर मे बिजली की दुकान करता है। बड़ी लड़की का नाम जयवन्ती जो आजकल मेरठ के आस पास रहती है, छोटी लड़की का नाम गुणवन्ती था। दो तीन वर्ष हुए उसका स्वर्गवास हो चुका।

हां, तो वे चारों बच्चे जून से नवम्बर तक अपने पिता के साथ जयपुर ही थे, जहां रामदेवीबाई के भाई काम कर रहे थे। नवम्बर के महीने में जैसे ही रामदेवीबाई को अपने भाई के इरादे का पता चला वैसे ही यह भी पता चला कि उनके भाई लाला गेंदनलाल जी के साथ एक गुरुकुल खोलने के इरादे से निकल पड़े हैं। और अब उन्होंने समझ लिया कि हर तरह उन्हीं को घर की सारी जिम्मेवारी लेनी होगी। तय करना था कि न जाने कहां से उनमें हिम्मत आ गई जो और तरह न मिल पाती। पढने वाले उनसे यह सबक ले सकते है कि क्या मर्द और क्या औरत और क्या पढ़े लिखे और क्या अपढ इन में राम तभी जागता है जब अपने ऊपर पड़ती है। रामदेवीबाई ने अब खुले दिल से लेन-देन, वणिज व्यापार और इक्के चलाने का काम शुरू कर दिया। घर की इतनी अच्छी व्यवस्था की जिसे देखकर पड़ौसी और मुहल्ले वाले अचरज करने लगे। कुछ ही दिनों में शहर के सभी लोग उन्हे '**गंगाराम की बेटी**' के नाम से जानने लगे, क्यो कि उनके पिता गंगाराम शहर में पहले से ही मशहूर थे।

घर गृहस्थी ठीक ढंग से सुख पूर्वक चल रही थी। जनवरी सन् १९११ के शुरू में रामदेवीबाई के भाई घर आये। और रामदेवीबाई के अकेले लड़के जैनेन्द्रकुमार, उन दिनों के आनन्दीलाल को अपने साथ ले गये। रामदेवीबाई ने आखों के अन्दर आसुओ को दबाये रख कर यह वेदना भी चुपचाप सह ली, एक शब्द भी न बोली। उन्हे बताया गया, रुड़की मे एक गुरुकुल खोला जा रहा है, उनका पुत्र आनन्दीलाल वहीं उनके भाई के साथ रहेगा। उन्हे जैसा बताया उस पर उन्होंने विश्वास कर लिया

और खुश खुश भाई और बेटे को विदा दी, और फिर अपने काम में वैसी ही जुट गई मानों कुछ हुआ ही न था।

एक महीना भी न बीता था कि उनके भाई की तो नहीं, लाला गेंदनलाल की एक चिट्ठी रामदेवीबाई को मिली जिसमे लिखा था कि वह उनके भाई के साथ मुजफ्फरनगर जा रहे हैं। और वहा महामण्डल का जलसा होगा। वहां यह तय किया जायगा कि गुरुकुल कहां और कैसे खोला जाय। उस चिट्ठी मे यह भी लिखा कि जिन अपने बड़े भाई के साथ लाला गेंदनलालजी ठहरे हुए थे उनसे गुरुकुल के मामले में उनका मेल नही खाता इसलिये रुढकी छोड़ रहे हैं। इस पत्र मे यह तो लिखा था कि आनन्दीलाल यानी जैनेन्द्र और गुणवती यानी लाला गेंदनलाल की छोटी लडकी दोनो अच्छी तरह है, पर यह नहीं लिखा था कि यह दोनों या उनमें से कोई उनके साथ मुजफ्फरनगर जा रहे है, या नही। इस छोटी सी भूल के कारण रामदेवीबाई बडी चिंता मे पड़ गई और कुछ समझ न पाई कि क्या करे? पाठक यह तो समझ ही ले कि उन दिनो रामदेवीबाई बहुत ही कम पढी लिखी थी। चिट्ठी वे खुद नही लिख सकती थी, चिट्ठी लिखाने के लिये दूसरो को ही ढूढना पड़ता था और रही उनकी भौजाई, उनके लिये तो काला अक्षर भैंस बराबर था। मतलब यह कि ननद भौजाई दोनों चिट्ठी लिखाने मे दूसरो के आश्रित थी। आश्रित थी यह इतना बुरा न था जितना यह कि लाला गेंदनलालजी ने उनको पता भी न लिखा जिसपर वह उनसे लिख कर पूछ सके और आनन्दीलाल का हाल जान सके, पर भाई पर विश्वास करने वाली रामदेवीबाई इस चिट्ठी से घबराई नहीं, अपने काम मे लगी रही। भौजाई की उमर उन दिनो १८-१९ की रही होगी। यह, कहने के लिये तो, तीन बच्चों की मां हो चुकी थी पर घर मे कुछ इस ढंग से रही थी कि कभी पाच मिनट भी बैठकर अपने पति से बातचीत न की थी। उनके पर्दे का यह हाल था कि पर्दे में से जरूर उन्होने अपने पति को जी भर कर देखा होगा, पर यह उनको अच्छी तरह मालूम था कि ११ बरस की उमर के बाद से उनके चेहरे पर उनके पति की नजर कभी ५-१० मिनट तो एक तरफ, दो तीन मिनट को भी नही पड़ी।

उनका विवाह आठ वरस की उमर मे हो गया था। इस तरह एक दो वरस तो वह जरूर अपने पति के साथ ऐसे खेली जैसे भाई वहन खेलते है, और खाने पीने की चीजों के लिये ऐसे लड़ी झगड़ी जैसे भाई वहन लड़ते–झगड़ते है। पर जिस दिन से घूघट शुरू हुआ उस दिन से सचमुच घूघट २४ घटे का घूघट वन गया। पाठकों को यह बात भले ही अनोखी मालूम हो पर है सच और उन्हे विश्वास कर लेना चाहिये। हा, तो इस तरह से पली रामदेवीवाई की भौजाई अपना दुःख किसे सुनाती ? आनन्दीलाल भले ही उनका भानजा हो पर उन्हे तो उससे बेटे जैसी मुहब्बत थी, पर वह इतनी ना समझ थी या इतनी ज्यादा समझदार थी कि अपनी उस मुहब्बत के नाते आनन्दीलाल के वारे में अपनी ननद से कुछ न पूछ पाई और अपने भावों को मन में मसोस कर रह गई। उन्हे जबरदस्ती उस ननद की नकल करनी पड़ती जिसका दिल न जाने किस तरह इतना मजबूत वन गया था, कि उन्होने अपने विधवा पने का दुख भाई का सहारा लेकर पूरी तरह कावू में कर लिया था, और अपने भाई की वेपरवाही के दुख को उसी तरह सह लेती थी, मानो उन पर कुछ बीता ही न हो। वह इस योग्य भी न थी कि यह समझ सकती कि मुसीवते झेलते झेलते दिल पत्थर हो जाता है, फिर उस पर कितनी ही मुसीवतें क्यो न आयें वह उन्हे ऐसे ही झेल लेता है जिसे देखकर देखन वाले यह समझ ही नही पाते कि कोई मुसीवत झेल रहा है। जिनको मुसीबत झेलने की आदत हो जाती है उनको वडी से वड़ी मुसीवतो में फसे देखकर कोई तरस नही खाता। रामदेवीवाई की भौजाई के मनकी वात वह खुद ही जान सकती थीं कि उनकामन किस तरह काम करता था और वह अपने मन को कैसे समझा कर अपन दुख झेलती थी। वह अव इस दुनियाँ में नही है और इस लेख का लेखक इस वातमें कुछ नही जानता और न किसी ऐसे को जानता है जो उसे उनके दिलकी वात वता सके।

हा तो यह ननद भौजाई सव दुखो को भूल कर अपने काममे जुटी रही। मुहल्ले वालो, विरादरी और शहर वालो से जहां तक कुछ मालूम हुआ वहा तक यही पता चला कि रामदेवीवाई हमेशा अपने कामो मे ऐसी लगीं मिली जैसे उन्हे कोई दुख नही। रामदेवीवाई की दोनो लड़कियां

अपने अपने घर की हो चुकी थीं और वह अब रामदेवीबाई के साथ रहने के लिये मजबूर न थी। उन पर उनके सास-ससुर का कब्जा था। वे जब चाहे तब भेजते और न चाहे न भेजते। अब श्री गंगाराम का कुटुंब था रामदेवीबाई, उनकी भौजाई और एक चार बरस का भतीजा और दूसरा दो तीन महीने का भतीजा।

श्री गगारामजी का कुटुम्ब अब भी जितना सुखी था वह काफी था। रामदेवीबाई भी उस उतने सुख पर सन्तोष किये हुए थी। उसकी भौजाई भी काफी सुखी थी, दो बच्चे उसकी गोद मे थे और वह अपने काम में लगी रहती थी।

१ मई १९११ को उनके भाई का फिर हमला हुआ और यह हमला इतने जोर का था कि रामदेवीबाई उसे बरदाश्त न कर सकी। भाई के खिलाफ बलवा कर बैठी। भौजाई को तो साथ देना ही था और उसने इस मौके का पूरा फायदा उठाया। यह हमला अपने ढग का अनोखा था। इसका रूप यह था कि भाई ने रामदेवीबाई को समझाया कि ११ मई को हस्तिनापुर मे गुरुकुल खुल जायगा। इसलिये उनकी यह राय है कि घर का सब सामान हस्तिनापुर पहुचा दिया जाय। इस पर रामदेवीबाई पूछ बैठी, वह क्या करे? उसके जवाब मे उनके भाई बोले—घर का सामान तो घर की मदद करता नही और जिस तरह तुम काम चला रही हो उसे मै रोकता नही। फिर एक तरह मै तुमको हल्का ही कर रहा हूं। इस पर रामदेवीबाई बोली, हम आपकी इस योजना पर सहमत है, पर जब हमें अपने हाथ से ही काम करना है तो वही रह कर क्यों न काम करे, जहां तुम गुरुकुल खोल रहे हो। इस पर उनके भाई ने उनको समझाया कि गुरुकुल का कोई ऐसा काम न होगा और न ऐसा शायद हो सकता है जो तुम्हारे सुपुर्द किया जा सके और जहा गुरुकुल खुल रहा है, वहा एकदम जगल है। वहां, नही कहा जा सकता, फौरन ही बाइया रह सकेगी या बाइयो के रहने का इन्तजाम किया जा सकेगा या नही। इस पर रामदेवीबाई ने कहा कि यह ठीक है कि हम फौरन नही चलती लेकिन जैसे ही हमे यह पता लगा कि हम वहां रह सकती है हम वही आ पहुचेगीं।

आपकी एक वात न मानेंगीं। उनके भाई ने यह तजवीज मान ली और मन में यह सोच कर मान ली कि कम से कम इस वक्त न तो रामदेवीवाई साथ चल रही है और न घर का सामान गुरुकुल भेजने में कोई अडचन डाल रही है।

आखिर दूसरे दिन घर का सामान सब अलीगढ़ भिजवा दिया गया और वहां से मेरठ के रास्ते हस्तिनापुर के जंगल में जा पड़ा। इस सामान में खाट, पीढ़ा, सारे वर्तन, वक्स, तिजोरी, चांदी के वर्तन, यहां तक कि तस्वीरे तक शामिल थीं। सिर्फ उतना ही सामान घर पर रह गया जितना काम चलाने के लिए वेहद जरूरी था। इसे भी भाई की कृपा ही समझिये कि इन्होंने न मकान को छेड़ा और न उस रुपये और जेवर को छड़ा जो रामदेवीवाई और उसकी भौजाई के कब्जे मे था। जहा तक पता चला है, यह जेवर भी रामदेवीवाई ने वेच डाला था और इसका रुपया यूनियन बैंक में जमा कर दिया था और यह भी पता चला है कि उस यूनियन वैंक का दिवाला निकल गया और हिसार के उग्रसेन जी वकील की मेहनत की वजह से रुपये मे तीन आना उस वक्त वसूल हो पाया जव रामदेवीवाई एक महिलाश्रम खोल चुकी थी और यह रुपया उस आश्रम में इस तरह खर्च हुआ जिस का कोई हिसाव आश्रम के वही खातों में नही है। रामदेवीवाई इस रुपये से वह काम लेती थी जिसके लिये आश्रम की कमेटी कोई रकम मंजूर न करती थी।

...छी तरह पता
रामदेवीवाई अपनी वात की पक्की ... पहुंची और गुरुकुल से
लगा कर तीन चार महीने के वाद हस्ति... कोठरी मे रहने लगी। उन
अलग हस्तिनापुर मन्दिर के हद के ... । यह वात न तीर्थ के इन्तजाम
की भौजाई और उनके दोनो बच्चे ... पसन्द आई। एक महीने के अन्दर
करने वालों को सुहाई और न ... भाई के साथ हस्तिनापुर में काम
लाला गेंदनलाल जी, जो रामदे... आये और हस्तिनापुर से तीन-चार
करते थे अपनी दोनो लडकियों ... न लेकर रहने लगे। उसी मकान में
मील दूर बहसूमा गांव मे ए... र दोनो भतीजे चले गये। थोड़े दिनों
रामदेवीवाई और उनकी भौ...

मदेवीबाई के मामा आ पहुचे, वे काम तो गुरुकुल मे करते, पर थोड़ी बहुत देख-भाल वहसूमा जा कर कर लेते। अब रामदेवीबाई लाला गेंदनलाल जी और अपने मामा की मदद से अपनी भौजाई और अपने दोनों भतीजे और लाला गेंदनलाल जी की दोनों लड़कियो की देख-भाल करने लगीं। बहसूमा में दो कुटुम्ब मिल कर एक कुटुम्ब की तरह रहने लगे। पाठक यह समझ ले कि बहसूमा मे भी रामदेवीबाई को किसी मर्द की मदद हासिल न थी क्योंकि लाला गेंदनलाल जी और रामदेवी के मामा दोनों उन से साढ़े-तीन मील दूर हस्तिनापुर रहते थे।

थोड़े दिनों में लाला गेंदनलाल जी की बड़ी लड़की सयानी हो गई और उसका विवाह रामदेवीबाई के इन्तजाम में बहसूमा में हो गया। उस विवाह मे एक ऐसी दुर्घटना हो गई कि यश के बजाय थोड़ा अपयश ही रामदेवीबाई के हाथ लगा। वह दुर्घटना यह थी कि रामदेवीबाई ने जल्दी मे भीगी हुई चने की दाल तलने के लिए कड़ाही मे डाल दी और इससे कड़ाही एकदम भभक उठी और आग की लौ इतनी ऊंची गई कि ऊपर ताने हुए चंदोवे मे आग लग गई। इतना अच्छा हुआ कि आग फौरन काबू में आ गई और चदोवा जलने के सिवा कोई और नुकसान नहीं हुआ।

जयन्ती विदा हो गई। रामदेवी के भाई ने रामदेवी के भतीजे को गुरुकुल मे ले लिया। छोटे भतीजे की दो-एक महीने बाद मौत हो गई।
मैं रोकता नहीं। गई, फिर रामदेवी और लाला गेंदनलाल जी की छोटी लडकी
पर रामदेवीबाई बोली, हम अ रामदेवीबाई की अब हिम्मत टूट गई और
हमें अपने हाथ से ही काम करना कर रही थी, वही मकानें उन्हे काट-
जहां तुम गुरुकुल खोल रहे हो। इस लिया कि अब उन को उन के भाई
कि गुरुकुल का कोई ऐसा काम न होगा उन्होंने जल्दी ही बम्बई, सेठ
जो तुम्हारे सुपुर्द किया जा सके और जहा श्रम मे जाकर तालीम हासिल
दम जगल है। वहां, नही कहा जा सकता, ही वहां पहुच गईं। उन्होंने
बाइयो के रहने का इन्तजाम किया जा सके। और अपनी भौजाई को भी
बाई ने कहा कि यह ठीक है कि हम फौरन इस योग्य हो गई कि वह
पता लगा कि हम वहां रह सकती छोड़ कर वह इदौर पहुंची

और सेठ हुकुमचन्द की धर्मपत्नी कचनबाई की महिला सस्था मे अधिष्ठात्री का काम करने लगीं। वहाँ उन को शायद १५० रुपये वेतन मिलता था और उनकी भौजाई को क्या मिलता था, यह ठीक नही मालूम। लाला गेंदनलालजी की छोटी लड़की गुणवती उनके साथ इन्दौर थी। उसका खर्चा लाला गेंदनलालजी भेजा करते थे।

कुछ दिनों में उन्होंने इन्दौर की सस्था छोड दी और दिल्ली में आकर एक मकान किराये पर लेकर रहने लगी। यह मकान भाई मोतीलालजी की मिल्कियत थी। मोतीलालजी एक त्यागी आदमी थे। मामूली पैसे वाले थे। उनके आगे-पीछे कोई न था। वे अपने पैसे से विद्यार्थियों को छात्र-वृत्ति देते थे और छिपे छिपे देश-भक्ति के नाते बम फेंकने वालों की भी मदद करते थे। शुरू मे उनको मन्दिरों से काफी रुचि थी इसलिये वह मकान जिसमे रामदेवीबाई जाकर किराये से रही थी, भाई मोतीलालजी ने मन्दिर के लिये दे डाला था, पीछे उनकी रुचि बदली और वह यह चाहते थे कि उस मकान का मन्दिर न बनकर धर्मशाला बने, पर बिरादरी मन्दिर बनाने पर तुली हुई थी। लिखा-पढी कुछ नही थी। अगर मुकदमा चलता तो हो सकता है बिरादरी जीत जाती और फिर वह मकान मन्दिर का ही रूप ले लेता, इसलिये मोतीलालजी यह चाहते थे कि उस मकान पर पूरा कब्जा कर ले और बिरादरी के हाथ से निकाल ले। यह सोचकर उन्होंने रामदेवीबाई से यह कहा कि वह उन्हे एक किरायानामा लिख दे। किराया बहुत थोड़ा था और वह सिर्फ नाम के लिये था। क्योंकि रामदेवीबाई ने वह मकान अपने लिये नही लिया था, एक आश्रम खोलने के लिये लिया था, पर इस नाम-मात्र के किराये का किरायानामा वह लिखने को तैयार न थी। उसकी वजह सिर्फ यह थी कि वह जिस घराने मे पैदा हुई थी उस घराने में किरायानामा लिखने-लिखाने का रिवाज न था। उनके बाप के खुद तीन तीन चार चार मकान थे और किराये पर उठाने का काम वह खुद करती थी और कभी किसी से किरायानामग नही लिखाती थी। बस यही संस्कार थे जो उन्हें किरायानामा लिख देने के लिये तैयार न होने देते थे। भाई अजितप्रसादजी जब उनको किरायानामा लिखने के लिये समझाने लगे

कि यह मामूली बात है, लखपति और करोडपति भी किरायानामा लिखते हैं, तो यह सुनकर वह कोई दलील तो न दे सकी, और रो पड़ी। कहने लगी, कि क्या हमारा इतना भी एतबार नही। आखिर अजितप्रसादजी ने यही मुनासिब समझा कि आगे उनसे कुछ न कहा जाय और वह उठकर चल दिये। इस किराये नामे के बारे मे भाई मोतीलालजी ने रामदेवीबाई के भाई से भी मदद लेनी चाही पर वह असफल रहे। किरायानामा न लिखा गया।

रामदेवी के भाई हस्तिनापुर गुरुकुल के अधिष्ठाता पद से अलग हो चुके थे पर संचालक के नाते रहते वही थे। गुरुकुल में और भी तरह तरह के झगडे खडे हो गये थे। उनकी खबर रामदेवीबाई को मिलती रहती थी। वह उन खबरों से कभी विचलित नहीं होती थी। उनको मालूम था कि उनका भाई अब राजनीति के मैदान में आ चुका है और वह अब इसके लिये तैयार थी कि एक न एक दिन उनका भाई इसी तरह जेल में बंद मिलेगा जिस तरह जयपुर के अर्जुनलाल सेठी। अर्जुनलाल सेठी उन दिनो वेलोर जेल मे नजर-बन्द थे। उन्होने एक सत्याग्रह कर रखा था। और जब उनकी मदद के लिये रामदेवीबाई के भाई वेलोर पहुँचे तब उन्हे पक्का विश्वास हो गया कि वह दिन दूर नही है जब वह अपने भाई को हथकडियाँ पहने और बेड़ियाँ खन खनाते देखेंगी।

पहली लड़ाई अभी जोरो पर थी। खतम होने की कोई सूरत नजर न आ रही थी। सन् १८ का चौथाई खतम हो चुका था, जब रामदेवीबाई ने दिल्ली में पहाडीधीरज पर महिला-आश्रम की स्थापना की। इसी सन् १८ के जुलाई महीने में उनका भाई बिजनौर मे पकड़ा गया और वह उनसे मिलने के लिये दौड़ी दौडी बिजनौर पहुँची। एक बार तो उनके भाई ने उनसे मिलने से इन्कार कर दिया क्योंकि उसे मालूम था कि रामदेवीबाई का दिल इतना जोरदार न था कि वह अपने भाई को हथकडियो और बेडियो में देख सकती। सन् '२१ के असहयोग आन्दोलन की तरह उन दिनों राजनैतिक-कैदियो को कोई सुविधा प्राप्त न थी। मामूली डाकुओ के साथ जो वर्ताव होता था उसी तरह उस हालत मे, जब तक

उन्हे सजा भी नही हुई होती थी, उनके पॉव मे डण्डा-बेडिया डाली जाती थी। और रातको कितने ही कैदी एक साथ एक जंजीर मे बाध दिये जाते थे। रामदेवी का भाई पजाब मार्शल लॉ मे पकड़ा गया था और उसके साथ भी मामूली डकैतो जैसा बर्ताव किया गया था। इसी वास्ते उसने रामदेवीबाई से मिलने से इन्कार कर दिया। जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट के कहने-सुनने पर वह रामदेवीबाई से मिला पर उसका अन्दाजा गलत निकला। रामदेवीबाई के चेहरे पर न कोई घबराहट थी, न कोई उदासी। आँख भीगने की तो कोई बात ही न थी। ऐसा मालूम होता है कि रामदेवीबाई ने अपने भाई के लिये कुछ करने की कोई योजना तैयार कर ली थी और इसी वजह से उनका दिल पक्का हो गया था और पक्के दिल के रास्ते में उदासी और घबराहट नही आया करती। मिलने के दो-तीन दिन बाद वह लाट साहब से मिली, पर लाट साहब ने यह कह कर तसल्ली दे दी कि बहुत जल्दी शाही इश्तिहार निकलने वाला है और उनके भाई जल्दी ही छोड दिये जायेंगे।

रामदेवीबाई जब इन्दौर की संस्था छोड़कर दिल्ली आईं तब उनके पास कुछ रकम थी। कुछ ननद भौजाई की तनखाह की, कुछ यूनियन बैंक की जो जेवर बेचकर जमा की गई थी। इन्दौर की संस्था छोड़ने की बात यो सूझी कि वह अेक अलग संस्था दिल्ली मे खोलना चाहती थी। दिल्ली में वैसी संस्था की जरूरत थी।

रामदेवीबाई जब दिल्ली आई तब उनका लडका जैनेन्द्र ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर में पढ़ता था। उनकी दोनो लडकियाँ अपनी अपनी ससुराल में थी और दोनो दो-दो तीन-तीन बच्चों की माँ हो चुकी थी। उनकी दोनो लड़कियो की तालीम मामूली थी। बड़ी लड़की छोटी लड़की से कुछ ज्यादह पढ़ी-लिखी थी। दोनो लड़कियाँ अलीगढ जिले में व्याही थी। बड़ी लड़की अलीगढ जिला छोड़ दिल्ली आ बसी थी।

महिलाश्रम की स्थापना होने से पहले दिल्ली की महिलाओं की अेक सभा बनाई गई, जिसकी अध्यक्षा थी, सुशीला देवी रायबहादुर सुलतानसिंह। यो तो महिलासभा की सभी स्त्रियो ने रामदेवीजी के साथ

बड़ी लगन से काम किया, पर तीन बाइयाँ तो हर तरह उनकी मदद करती थी। वह तीन थी, सुशीलादेवी सुल्तानसिंह, सुखनीदेवी मीरीमल और रतनदेवी। इन तीन देवियों की अगर उनको पूरी मदद न होती, तो आश्रम की स्थापना के तीन बरस बाद जो झगड़े शुरू हुए उनमें आश्रम खतम हो गया होता। ये तीनों देवियाँ बड़ी हिम्मत से रामदेवीबाई के साथ आखरी दमतक काम करती रही।

महिलाश्रम की स्थापना सन् १९१८ में इसी महिला सभा ने की। अगर यह महिला सभा चाहती तो आश्रम को अच्छी तरह चला सकती थी। अगर उसने यह काम हर तरह अपने हाथ में रखा होता तो महिलाश्रम की शकल कोई दूसरी होती और उसने बहुत जल्द अपना निज का मकान बना लिया होता और महिलाओ में बड़ी जागृति कर दी होती, पर वैसा होना न बदा था। आश्रम की स्थापना के साथ साथ उसकी मदद करने के लिये अेक पुरुष कमेटी बनानी पड़ी और उस पुरुष कमेटी और महिला कमेटी में बहुत जल्द मतभेद खड़ा हो गया। रामदेवी-बाई यह नही चाहती थी कि पुरुष कमेटी आश्रम के अन्दरूनी मामलो में दखल दे और महिला सभा भी इसी खयाल की थी। अगर अैसा न होता तो आश्रम सत्रह बरस न चल पाता। अेक बार पुरुष कमेटी ने रामदेवी-बाई की गैरहाजरी में, जब वह आश्रम के प्रचार के लिये बाहर गई हुई थी, आश्रम मे ताला लगा दिया जिसका विस्तार से वर्णन हम आगे कही करेगे। पर रामदेवी बाई जैसे ही लौटी उन्होंने ताला तोड दिया और आश्रम वैसे ही चलने लगा जैसे चल रहा था। उनकी यह हिम्मत देख पुरुष कमेटी में फूट पड़ गई। पुरुष कमेटी के दो दल हो गये। अेक दल चाहता था, आश्रम बिलकुल तोड़ दिया जाय या सारा इन्तजाम पुरुष कमेटी के हाथ आ जाय, दूसरा दल चाहता था, आश्रम के अन्दरूनी मामले में पुरुष कमेटी कोई दखल न दे, संस्था का सारा काम महिला कमेटी सभाले। पुरुष कमेटी का काम हो, आश्रमपर बाहरी कठिनाई आनेपर उसकी मदद करना।

पुरुष कमेटी और महिला कमेटी में मनमुटाव के कारण क्या थे? इनको जान लेने से हमारे पढनेवाले जान लेंगे कि रामदेवीबाई कितनी

हिम्मत की महिला थी और वह दिल्ली की महिलाओ को क्या बनाना चाहती थी ? इस बात के मानने से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह दिल्ली की महिलाओ से हिम्मत पाती और उसी हिम्मत को दुगुनी चौगुनी करके उन्ही में बाँट देती। रामदेवीबाई, या दिल्ली की महिलायें इन दो में से कोई कमजोर होता तो आश्रम एक दिन न चल पाता। रामदेवीबाई आश्रम को संभालती थी, यह मामूली काम न था। दिल्ली की महिलायें उस काम को नही कर सकती थीं। रामदेवीबाई आश्रम चलाने के लिए आश्रम के अन्दरूनी मामले में पुरुष कमेटी के किसी आदमी का दखल नहीं चाहती थी। ऐसा करने से पुरुष कमेटी एक बेकार-सी चीज बन जाती थी। वह या तो मुनीम रह जाती थी या मामूली दफ्तर जो या तो आश्रम की सचालिका रामदेवीबाई के इशारे पर काम करे या महिला सभा की अध्यक्षा के तावे रहे। यह पुरुष कमेटी को कब बरदाश्त हो सकता था, इसलिये पुरुष कमेटी ने रामदेवीबाई पर तरह तरह के दोषारोपण शुरू कर दिये। महिला सभा अपने आप में कोई चीज न थी, न उसका कोई खास काम था और न उसके पास फंड थे और न वह अपने लिये कोई ज्यादा धन जमा कर सकती थी। महिला सभा के हाथ से अगर आश्रम अलग कर दिया जाय तो महिला सभा कुछ न रह जाती। महिला सभा के काम का केन्द्र आश्रम था और आश्रम सब तरह रामदेवीबाई के हाथ मे था। वह उसकी संचालिका ही नहीं संस्थापिका भी थी। जितनी छात्रायें उसमें बाहर से आती थी उन छात्राओं के रिश्तेदार, इतना महिला सभा पर भरोसा नही करते थे जितना रामदेवीबाई पर। वह रामदेवीबाई की निजी जिम्मेवारी पर ही अपने बच्चों को आश्रम के सुपुर्द करते थे।

आश्रम का नाम महिलाश्रम जानबूझकर रखा गया था। उसमे सभी उम्र की छात्रायें थी। सभी तरह की थीं, यानी कुमारी, सधवा, विधवा, इनमें से विधवाओ की जिम्मेबारी बेहद मुश्किल थी। उन दिनों समाज का यह हाल था कि वह अपनी कुमारी लड़कियो और सधवा बहू-बेटियो को आश्रम में भेजते नही झिझकती थी, पर विधवाओं को

किसी हालत मे किसी दूसरे के सुपुर्द करना ठीक नही समझती थी। आश्रम का नाम महिलाश्रम होते हुए भी आश्रम विधवाओं की मदद ज्यादा करना चाहता था। विधवाओं के लाने का काम रामदेवीवाई के सिवा कोई दूसरा नही कर सकता था। रामदेवीवाई विधवाओ को आश्रम में लाकर उनकी जिम्मेवारी किसी ऐसे आदमी के सुपुर्द नही कर सकती थी जिन्हे वह खूव अच्छी तरह न जानती हो, जिन पर उन्हे पक्का भरोसा न हो और जिन पर उनका हर तरह जोर न हो। इन शर्तो को पूरा करने के लिये वह इसके सिवा क्या करती कि उन्होने अपनी दोनों लडकियो को आश्रम में रखकर विधवाओ को उनके सुपुर्द किया। उनकी अपनी लड़कियो का आश्रम मे काम करना उस मन-मुटाव के कारणो में से एक था जो पुरुप और महिला कमेटियो के वीच हो गये। पुरुप कमेटी के इल्जामों में से एक इल्जाम था कि वह आश्रम क्या चलाती है, अपनी लड़कियों को पालती है।

रामदेवीवाई इस इल्जाम को ऐसे पी जाती जैसे कोई रेगिस्तान नदी को। पुरुष कमेटी का यह इल्जाम कहाँ तक ठीक था इसको महिलाये खूव समझती थी और महिला सभा की जिम्मेवार महिलाये आश्रम मे रह रहकर छोटी से छोटी वात को जानती थी, जान सकती थी और जान लेती थी। रामदेवीवाई की लडकियों का काम उनकी आंखो के सामने था। वह यह खूब समझती थी कि उन लडकियों से सस्ती और पूरी तरह जिम्मेवारी समझनेवाली दूसरी अध्यापिकाये नही मिल सकती। वह ठीक है, इस वजह से महिलाश्रम की पढाई का क्रम ऊँचा न हो पाया, पर आश्रम को वनाये रखने के लिये उतनी ऊँचे क्रम की जरूरत न थी जितनी विधवाओ के देख-भाल की।

रामदेवीवाई शिक्षा के ऊँचे क्रम की तरफ से बेपर्वाह न थी, वह पुरुष अध्यापकों को आश्रम मे वुलाती, पर उनके पास वह अपनी लड़कियों को ही पढ़ने के लिये भेजती, छोटी उम्रकी कुमारी लडकियाँ भी उनसे पाठ ले सकती थी पर विधवाओ के पढाने का काम उनकी लडकियाँ करती थी या इसी तरह की और जिम्मेदार वाइयाँ, या कभी कभी फुरसत हुई तो वह

खुद कर लेती थी। अपनी लडकियो को अध्यापक रख कर पढ़ाना पुरुप-कमेटी के नाराज होने का दूसरा कारण था।

रामदेवीवाई का विधवा विवाह के वारे मे क्या विचार था उसे यहाँ थोड़ा समझ लेना चाहिये। उसको समझे विना रामदेवीबाई का जीवन समझ में नही आ सकता और हमारे पढ़नेवालों को यह मान लेना चाहिये कि किसी और की अपेक्षा, हम ज्यादा प्रमाण है। हमने उनको वहुत पास से जाना है।

हिन्दुस्तान में जो जात दुजन्मी मानी जाती है जैसे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वह सब दस्सो वीसो में वंटी है। वीसे वह जिन मे विधवा विवाह जारी नही, दस्से वह जिनमें विधवा विवाह का रिवाज है। रामदेवीबाई दस्सो वीसो मे कोई भेद न करती थी। यह इस वात का सवूत है कि वह विधवा विवाह को वुरा न समझती थी। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ने जव विधवा विवाह की आवाज उठाई तव समाज के एक हिस्से ने ब्रह्मचारीजी का वाईकाट किया। रामदेवीवाई ने जब वह दिल्ली आये उनका स्वागत किया, और मुखनीदेवी, जो महिला मभा की मेंबर थीं उनके यहा ब्रह्मचारीजी का आहार हुआ। रामदेवीवाई खुद ब्रह्मचारीजी से मिलने पहुँची, उनके विचार अच्छी तरह सुने, पर अपनी राय न दी। वह इस खयाल की थी कि विधवा विवाह प्रचार की चीज नही, सह लेने की चीज है। उनका खयाल था कि विधवा विवाह समाज के लिये कितना ही उपयोगी क्यो न हो, समाज को अैसी विधवाओं की वरसो जरूरत बनी रहेगी जो विवाह की झंझट में न फँसकर महिलाओ के उठाने के काम मे लगें। रामदेवीबाई का कहना था कि कुमारी लड़कियों से यह आशा नही की जा सकती कि वह आजन्म शादी न करेगी क्योंकि उनके खूनमे इस तरह के खयाल को जगह नही है, उनके लिये समाज ने कोई व्यवस्था नही की। वालविधवाएँ, फिर वह किसी उम्र की क्यो न हों, उनके खूनमे विवाह न करने का खयाल रहता है और समाज ने इस तरह की व्यवस्था दे रखी है कि विधवाओ को विवाह नही करना चाहिये। इसलिये उन विधवाओमें से अेक-दो फीसदी अैसी निकल सकती है जो शादी करने की वात न

रोबदार चेहरा देखकर कहने लगा, 'कॉंग्रेस को अगर ऐसी दो चार बाइयां मिल जायं तो अंग्रेजी राज का पाँसा पलट जाय।'

आश्रम के लिये चन्दा लाने में उनको अपनेपर इतना विश्वास था कि वह आम तौर से उस वक्त चंदा लाने निकलती, जब आश्रम के कोष में इतना कम रुपया रह जाता कि काम करनेवालो को तनख्वा न दी जा सकती होती। इस आत्म विश्वास के बल पर उन्होने कभी आश्रम के लिये ध्रुव फंड नही रखा। जबसे पुरुष कमेटी उनका रुपया दबाकर बैठ गई तबसे उनको ध्रुव फड करने से घृणा हो गई। मरने से पहले जब उन्होने आश्रम को खत्म किया तो कुल दो हजार रुपिया फिक्स डिपॉजिट मे था, अेक सौ आठ रुपया कुछ आना पाई आश्रम की रोकड़ में था।

अेक घटना सुनिये और नतीजा निकालने की कोशिश कीजिये कि खानपानके मामले में उनके क्या विचार थे। खुद उनका यह हाल था कि उनका ढाई-तीन बरस का पोता उनके चौके में नही जा सकता था, लेकिन अपना ढग वह दूसरोपर नही लादना चाहती थी। लाहोर कॉंग्रेस से उसका लडका जैनेन्द्र वापस आया। उसके साथ कांग्रेस कमेटी के मेम्बर मुजफ्फरहुसैन साथ थे। ओढावे-पहनावे, रहनसहन में मुजफ्फरसाहब बिलकुल हिन्दू मालूम होते थे, नाम मुसलमानी था। देहली में जैनेन्द्र के मेहमान हुए। उन्होने चौके में बैठकर खाना खाया, जैसे सब लोग खाते हैं। उनके साथ किसी तरह का परहेज नहीं बरता गया। रामदेवीबाई की बड़ी लड़की सुभद्रा, अपनी माँ से बोली, "माँ, तुम वैसे तो बड़ा शोध करती हो और मुजफ्फ़र हुसैन को अपने चौके में खिला दिया?"

रामदेवीबाई बोली, वह तो हिन्दू दिखाई देते थे। मै समझती हू हिन्दू थे।

उनकी लड़की बोली, उनका नाम तुमने नही सुना, मुजफ्फ़र हुसैन?

रामदेवीबाई बोली, नाम मुज़फ्फ़र होने से कोई मुसलमान हो जाता है? याद नही, तुम्हारे मामा उस प्यारेलाल नौकर को 'अजीज-अहमद'

कहकर पुकारा कहते थे। यह जैनेन्द्र उन्हीका भानजा है, अैसेही किसीका नाम मुज़फ्फ़र हुसैन रख दिया होगा।

लड़की बोली, नही अम्मा, वह सचमुच मुसलमान थे।

रामदेवीबाई बोली, सचमुच मुसलमाय थे, तो चलो थालो आगमें रख लेगे।

लड़की बोली, और भैया का क्या करोगी जिसने उनके हाथका छुआ खा लिया ?

रामदेवीबाई बोली, मर्दोका कुछ नही बिगड़ा करता। उन में शुद्ध आत्मा रहता है। चीजे झूठी होती हैं, आदमी का मुह थोड़े झूठा होता है।

गान्धी युग में ऊपर की बात कोई महत्व नहीं रखती। देखना यह है कि रामदेवीबाई बाह्य-कर्म-काण्ड को पालती थी, पर बेकार चीज समझती थी। ऊपर की बात से और इस बात से जरा मेल बिठाइये, बरसों उन्होने अपनी बहू के हाथ का खाना नही खाया, क्यों कि बहूका न वह धर्म था न वह जात थी जिस धर्म जात की वह थी। पर उस बहूके लिये उनका प्यार उतनाही था, जितना किसी और के लिये। अेक बार उस बहूके अेक बच्चे को उन्होने खुद जनाया था क्यों कि दाई न आ पाई थी। उनका खान-पान, उनकी छुआछूत उनकी अपनी देह से आगे कभी न बढ़ पाया। वह किसी बीमारकी अैसी सेवा कर सकती थी, कर लेती थी और करती थी जैसे किसी अपने छोटे बच्चेकी। अेक बार जब दिल्ली के मेहतरोंने हड़ताल बोल दी तब आश्रम का टट्टीघर साफ करने के वक्त उनका चेहरा देखने लायक होता था। कोई नहीं कह सकता था कि यह पुश्तैनी मेहतरानी से किस तरह कम है। अब बताइये उनके छूतछात का क्या अर्थ रह जाता है ? यहाँ हम अमरावती में आज एक जीवित बाई का जिक्र किये बगैर न रहेंगें।

वह बाई विधवा है। शायद शान्ता उसका नाम है। आयु २५-२६ होगी। एक छोटी बच्ची उसने गोद ले रखी है। सास ससुर, मा बाप जीवित है। दोनों घराने खाते पीते है, उसे प्यार करते हैं। उसे किसी तरह की कमी नही। खान-पान में वह पक्की है। किसी का छूआ नहीं

खाती, कुए का पानी पीती है, नल के पानी से परहेज है, पर है हरिजन सेवा पर मुग्ध। दिनरात वही उसकी धुन है। वह उन मेहतरों की सेवा करने जाती है, जो उस पानी से नहाते हैं जो गदी नाली में बहकर जाता है। उनके बच्चों की ऐसे ही सेवा करती है, मानो वह उसी के बच्चे हो। उनकी सेवा में लगे देख उसको कोई यह नही कह सकता कि वह मेहतरो मे से एक नही है। उसका गोरा चेहरा अकेली ऐसी चीज है जो उसको उन सबसे अलहदा कर देता है, नही तो वह किसी तरह पहचान में नही आ सकती। एक बार जब हम अमरावती गये तो उस बाई के कुछ सहधर्मियो ने, जो काँग्रेस में काम करते थे, हम से कहा, 'आप इस बाई को उपदेश दीजिये कि यह इतना छुआछात न करे। इसका यह हाल है कि सिवाय अपनी जात के और किसी जात का छुआ हुआ नहीं खाती। उसका हरिजन सेवा का हाल हम पहले सुन चुके थे। हमने उस बाई से पूछा, बेटी, तुम इतनी हरिजन सेवक होकर ऐसा क्यों करती हो? उस बाईने जवाब दिया, "मै किसी के हाथ का खाना कैसे खा लू? वह सब लोग न तो कुए का पानी काम में लेते है और न पानी को छानते है।" यह जवाब सुनकर मैंने उसके सहधर्मी बंधुओ से कहा, मैने इस बाई को खूब समझ लिया। इसे मेरे उपदेश की कोई जरूरत नहीं। इसका छूआछात और खान-पान इसकी हरिजन सेवा की जान है। इस बाई से यह छुड़ाकर मै इस से हरिजन सेवा छुड़ा दूगा। और फिर मैंने उसे कोई उपदेश नही दिया।

रामदेवीबाई का छुआछूत और खान-पान बस एक तूंबी थी जिसे बगल में दबाकर वह सेवा सागर में बिना हाथ पाव हिलाये तैर सकती थी।

उनकी सारो छूआछूत उनकी सवारी थी। औरो की छूआछूत की तरह वह उसकी सवारी कभी न बन पाई। जरा इसका मेल बिठाइये। एक ओर मेहतरानी तक का काम कर लेना और दूसरी ओर जब प्राण निकलने को है तब नल के पानी से इन्कार कर देना। रातको दवा तक न खाना और आखिर प्राणों को निकल जाने देना।

इसको आप चमत्कार कहिये, वरकत कहिये, पुण्य प्रभाव कहिये या कुछ भी कहिये वह गरीवी में रही, अमीरी में रही, जहाँ रहीं वहाँ कभी खाने-पीने की कभी न हो पाई। घरका इंतजाम करना उन्हे इतना अच्छा आता था कि कम-से-कम में ज्यादा से ज्यादा मेहमानों को वह, न जाने किस तरह, खिला देती थी। उनके जीते जी शायद ही कोई फ़क़ीर खाली हाथ गया होगा। आज उन्हीं के कुटुंवी अेक मेहमान से घवरा जाते हैं, उनकी जिन्दगी मे दस मेहमान उस घर से इस तरह खा जाते, जैसे दस शहद की मक्खिया किसी फूल से शहद ले गई हों। रातके वारह वजे जव वह सोई हुई है हिन्दी के उपन्यास सम्राट प्रेमचंद उनके मेहमान होते है। जैनेन्द्र घवरा उठता है। रातके वारह वजे वाजार से कोई चीज कैसे मिल सकती है? जैनेन्द्र सोच नही पाता कि रामदेवीवाई की आवाज लगती है, वेटा, प्रेमचंदजी को खाने के लिये भेजो। यह थी उनकी हिम्मत, यह था उनका अतिथि प्रेम और यह था उनका आत्मविश्वास। यह प्रेम वह पेट से ले कर जन्मी थीं। उनको अपना छोटा भाई इतना प्यारा था कि उसने किसी वक्त भी जव किसी खाने की चीज को माँगा, कि उन्होंने चूल्हा सिलगा कर झट उसे वना कर दी। प्रेम कुछ है ही अैसी चीज जो वेहद फुर्ती और वेहद सावन-सूझ पैदा कर देता है। यही घरेलू प्रेम रामदेवी-वाई में वढ़ कर समाजप्रेम और देशप्रेम का रूप न लेता तो क्या वह मरते दमतक अपने में इतनी ज्यादा फुर्ती और साधन-सूझ कायम रख सकती? आज उनके छोटे रूप में उनकी वड़ी लड़की सुभद्रा मौजूद है। कोई चाहे तो उसका घर देख सकता है। वह थोड़े से साधनो में अपने घरको इतनी अच्छी तरह सम्हाल लेती है जितना कोई वहुत साधन सम्पन्न नहीं सम्हाल सकता। गलत या सही हमारे मन पर रामदेवीवाई और उनकी लड़की ने अैसी छाप विठा दी है कि हमारे मुँह से यह निकले विना नही रह सकता कि नीयत से वरकत होती है। जड़वादी शायद इस वात को न मानें, पर आत्मवादी इसे इन्कार न करेगा।

रामदेवीवाई को अगर किसीने उनकी मौत से वरस-दो वरस पहले देखा होता तो वह शायद अपने मन पर यह छाप ले जाता कि उन्हें

अपने पोतीपोतों और नाती नातिनों से बहुत मोह है। पर उसी आदमी ने अगर उनको मरते वक्त देखा होता तो वह समझ लेता कि उनका सारा जीवन जल में कमल के समान था। अगर अैसा न होता तो जिस तरह उनका जीवन बीता था उस दुख को वह नही सह सकती थीं। यह ठीक है उन्होंने सिर्फ ६९ वर्ष की उमर पाई, उनको ७०-७५ का होकर मरना चाहिये था या इससे भी ज्यादा। हम यह कह सकते हैं कि उनकी अकाल मृत्यु हुई, पर इस अकाल मृत्यु का कारण यह नही था कि वह किसी तरह चिंतित थी। आखिरी दम तक उनका मन शान्त था, उनकी बुद्धि स्वच्छ थी, उनके विचार निर्मल थे, उनकी इन्द्रियाँ उनके वश में थी। बेहद तकलीफ़ को वह इस तरह सह रही थी मानो कुछ है ही नही। इसलिये यही कहना पड़ेगा कि उनकी अकाल मृत्युका कारण उनके खानपान के वह बेतुके तरीके थे जिनको वह धर्म समझे हुए थी। और जिन डॉक्टरो, हकीमो या वैद्यों ने उन्हे देखा उनकी यही राय थी जो हमारी राय है। अैसी शान्त महिला को और जलोदर की बीमारी ! जलोदर मे क्या होता है ? यह कोई किताब उठाकर देख लीजिये उसमें जो कारण दिये हुए है वह अेक भी रामदेवीबाई पर लागू नही होते। उनका जिस तरह का खानपान था वैसा खानपान आम तौर से देखने में नही आता इसलिये हकीम वैद्य यह कल्पना नही कर सकते कि उस तरह के खानपान से जलोदर हो सकता है। काश उनके जैसी मौत यूरोप में हुई होती तो जलोदर के अेक नये कारण की स्थापना हो गई होती। हम हकीम वैद्य नही है, पर हमारी यह राय है कि उन्होने नल का पानी न पीने की वजह से जो समय बेसमय अपनी प्यास को मारा उसकी वजह से उनके पेट के अंदर की ग्रथियो ने पानी पैदा करने के लिये जोर मारा और फिर वह धीरे धीरे पानी पैदा करने लगी और मठरी जैसे दुर्पच खाने के लिये अगर वह ग्रथियाँ अैसा न करती तो रामदेवीबाई को ५९ बरस तक कैसे जिंदा रख सकती ? उनके खाने पीनेकी कोई अेक झंझट थी ? वह मिल का पिसा आटा न खाती थीं, कितने दिन अैसे होते थे जिनमें वह सब्जी तरकारी नही खा सकती थी। देह

सो देह है, वह आत्माका घोड़ा है। वह ठीक दाना पानी न मिलने पर जहांतक बने वहांतक साथ निभाता है, क्यों कि कुत्ते और घोड़े की तरह वह आत्माका बड़ा वफादार है। पर वफादारी से पेट नहीं भरता। पेट तो ठीक ठीक चीज से भरता है, पर रामदेवीबाईने समझ रखा था कि उनका देहरूपी वफादार घोड़ा कुछ खाकर जी सकता है, पर वैसा न हो पाया।

यह मानी हुई बात है, जिसको जितना राग होता है उतना उसको द्वेष होना चाहिये। जितना उन्हे अपनी आश्रम की छात्राओ से प्रेम था उतनीही उनकी देखरेख सख्त थी। विधवाओ की देखरेख और ज्यादा सख्त थी जिसका नतीजा यह था कि सधवा और कुमारी आमतौर से, और विधवा खास तौर से उनके कड़े शासन से हमेशा तंग रहती थी। आज भी जो बहुत समझदार विधवायें अैसी जीवित है जो उनके आश्रम की छात्रा रह चुकी हैं वह भले ही उनकी तारीफ करती हो, पर वह जो जरा नासमझ हैं उनके मुँहसे तो उनकी बुराईही सुनने को मिलेगी और बुराई यही कि उनका शासन सख्त था। इतने सख्त शासन के रहते हुए उनकी मौत से दो बरस पहले अेक संगीन मामला हो ही गया। जिसकी चोट वह न सह पाई। उनके आखिरी दिनो में हम अेक महीनेतक उनके साथ थे। मौत से ठीक सात दिन पहले वह अपने दिलको उस मामले से हलका कर पाई थीं जिसका उनको बहुत दुख था। शायद इस दिलके हलके होने में यह वजह रही हो कि उन्होंने अपनी मौत से दस दिन पहले आश्रमको खत्म कर दिया था। उसकी सब छात्राओं को उनके घर भेज दिया था। वह संगीन मामला, जिसका उन्हें बहुत दुख रहा, वह था अेक विधवाका अेक ब्रह्मचारी से सम्बन्ध हो जाना। रिवाज के अनुसार साधु ब्रह्मचारी आश्रम मे आ जा सकते थे। उपदेश वगैरह दे सकते थे। अैसे गन्दे मामले को हम विस्तार के साथ कहना पसन्द नही करेंगे; सिर्फ इतना कहेगे कि किसी तरह एक ब्रम्हचारी ने अेक विधवा को फुसला लिया। वजह यह थी कि वह उसी की जात की थी, उसी के गांव की थीं। उसका उससे कोई दूरका रिश्ता भी था। इतनाही नही, इससे भी बढ़ कर

अेक बात और थी, उस विधवा का कुछ पैसा उस ब्रह्मचारी के पास ट्रस्टी की हैसियत से रखा हुआ था। इन सब बातो ने मिल कर रामदेवीबाई के आश्रम के सारे प्रबंध और सख्ती सबको धोखे में डाल दिया, सबको बेकार साबित कर दिया। रामदेवीबाई जिस सचाई के बल पर पुरुष कमेटी से भिड़ बैठती थी और महिला कमेटी पर धाक जमाये रखती थी वह सचाई ही जब हिलगई तब उन में वह बल न रह गया जो रहना चाहिये था। इतनाही नहीं, उस विधवा के सम्बध में महिला कमेटी ने जो कदम उठाये उनसे उनका आत्मा दुखी हुआ। वह अैसा समझने लगी कि वह बहुत बड़े दण्ड की भागी है। उस मामले को सह जाने के लिये जितने ज्ञान की जरूरत थी उतना ज्ञान भी उनके पास न था, इसलिये वह मानसिक दुखको दूर न कर पाईं। हाँ, उस दिन जिस दिन अपनी बहू का जीने पर से उतरते पाँव फिसल कर गर्भ गिर गया, उनको मालूम हुआ कि उनको अैसी सजा मिलगई जिसकी वह हरतरह हकदार थी। इससे उनके मन को कुछ तसल्ली हुई। जिस वक्त उन्होने यह घटना हमको सुनाई, उन्होंने आँसुओ से अपने सारे कपड़े तर कर लिये थे। यह ठीक है, वह इसके बाद आश्रम को दो बरस खीच ले गईं, पर अब आश्रम अैसे ही चल रहा था जैसे वह चाक जो कुम्हार के डंडेसे बल पाकर डंडा हट जाने पर भी चलता रहता। बस अब आश्रम चलता था, रामदेवीबाई उसे चलाती न थी।

जब वह बीमार पड़ी तब उनको देख-भाल के लिये आश्रम में उनसे कोई बड़ा न था। उनको देखभाल किस तरह की जाय? उनके लिये किस हकीम-वैद्य को बुलाया जाय? यह तय करना उनका अपना काम था। वह खुद क्या तय करती यह वह समझ न पाती थीं। उनकी दो नातिनें जो उनके बारे में सोच सकती थी वह आश्रम के चन्दे के लिये बाहर गई हुई थी। इसलिये शुरू शुरू में बीमारी को ज्यादा परवाह न की गई। जब बीमारी काफी बढ गई और रामदेवीबाई का उठना बैठना बंद हो गया तब इनको तार चिट्ठी देकर बुलाया गया जिनसे सेवा की कुछ आशा थी। उनमें से हम भी एक थे। हम वक्त से पहुंच गये।

हम जिस वक्त पहुँचे उस वक्त रामदेवीबाई के मोह का वह दिखावा खत्म हो चुका था जिसे वह बरसों से दिखाती आ रही थी। उनका पाँच बरस का पोता उनके पास आता और चला जाता। वह न उसको बुलातीं और न कभी यह पूछती कि उसने क्या खाया और कब खाया। जब पोते के साथ यह बर्ताव था तब बेटे बेटियों के साथ क्या होगा, उसका अंदाजा पढ़नेवाले अपन आप लगा सकते हैं। दिसम्बर का महीना था, 'दिल्ली की सरदी! पांच सेर रूई का लिहाफ जिसका मुकाबला न कर सके, उस सरदी में जलोदर की तकलीफ की जलन रामदेवीबाई को इतनी जोर की होती थी कि हम बरफ का डला उनके पेट पर घण्टों रखकर उन्हें कोई आराम नहीं पहुँचा सकते थे। हो सकता है, उस बरफ से उनकी जलन कुछ कम होती हो। ऐसी हालत में रामदेवीबाई का दिमाग इतना सही था कि वह ऊँचे दरजे की बात सोच सकती थी। एक दिन हम से बोली, एक बहुत तकलीफ में दूसरी बहुत तकलीफ, तकलीफ नही रह जाती। वह उनके अनुभव की बात थी। जब किसी तरह उनके पेट का पानी कम न हुआ, न निकला तब डॉक्टर की मदद ली गई। यहां यह खयाल रहे, रामदेवीबाई की बीमारी मे डॉक्टरी की ऊंची मदद नहीं ली जा सकती थी, क्यों कि वह बिक्री की चीज थी, और इतने पैसे का कोई इतजाम न था। दवाओ के मामले में उन डॉक्टरों की मदद यों नही ली जा सकती थीं कि रामदेवीबाई अग्रेजी दवा खाने के लिए तैयार न थी। जो रात को दवा नही खा सकती उनसे डाक्टरी दवा खाने की उम्मीद कैसे की जा सकती है? आखिर जैनेन्द्रकुमार के एक दोस्त डॉक्टर की मदद ली गई। उसके आने पर यह सवाल खड़ा हुआ कि उनको पेशाव उतारा जाय। उसके लिए एक नली डालने की जरूरत थी। यह काम उनकी बहू के सुपुर्द हुआ, पर वह नली न डाल सकी और उस काम के बिलकुल अयोग्य साबित हुई। यही काम आश्रम की दूसरी लड़कियो से लिया गया। सबकी सब अयोग्य साबित हुईं। यह देख हम बड़े अचरज मे आ गये कि आजकल की यह क्या शिक्षा है जो बच्चो को इतनी जानकारी नही कराई जाती कि वह अपनी देह का थोड़ा बहुत हाल

भी जाने। हाँ, तो जब सब लड़कियाँ फेल हुईं तब रामदेवीबाई डॉक्टर से बोली, आप लड़कियों को छोड़िये, आप खुद वह नली लगाइये। वह नली लगाई गई। मामूली दो चार बूंद पेशाब आया, नतीजा कुछ न हुआ। डॉक्टर बोला, पेट में सूराख करना होगा। रामदेवीबाई बोलीं हाँ, कीजिये। रामदेवीबाई को बिठाकर डॉक्टर ने उनके पेट में सूराख किया। हमने देखा कि सूराख करने की तकलीफ को रामदेवीबाई ने इतना भी नहीं माना जितना लोग इंजेक्शन यानी सूई लगने को मानते हैं। हम यह कहकर अपने पढनेवालों पर यह हरगिज असर नही डालना चाहते कि रामदेवीबाई कोई सिद्ध थी या उन्हें कोई तकलीफ नही होती थी। यह बात कि उनको तकलीफ क्यों नही हुई, रामदेवीबाई पहले ही अपने मुंह से कह चुकी थी कि बहुत तकलीफ मे दूसरी तकलीफ छिप जाती है। उनको जलोदर की इतनी तकलीफ थी कि पेट में सूराख होने की तकलीफ कोई तकलीफ न रह गई, पर उस सूराख के रास्ते पाव आधपाव से ज्यादा पानी न निकला। या तो वह सूराख ठीक नहीं हुआ, या अैसी जगह हुआ जहाँ से ज्यादा पानी न निकल सकता था। उसके बाद वैद्य, हकीम के इलाज चलते रहे, पर कोई नफा न हुआ।

किसी ने उनको कांजी का पानी पीने के लिये बताया। कांजी बनाने का काम आश्रम की किसी लडकी के सुपुर्द हुआ। कांजी का पानी बनने में शायद दो-अेक दिन लगते है। जब वह बनकर तैयार हुआ और उन्हे दिया गया तो वह इतना खराब था कि रामदेवीबाई उसे जीभ पर न रख सकी। हमने उसे चाखा। वह सचमुच अैसी चीज थी कि उसे कोई नही पी सकता था। पता लगा नमक की जगह उसमें फिटकरी डाल दी गई थी। जैसे ही रामदेवीबाई को यह पता चला, वह इतनी बीमार होते हुए हंस पड़ी और किसी की शिकायत न की।

सात आठ रोज तक उनका यह हाल रहा कि वह कुछ न खा सकती थी। भूख एकदम जवाब दे गई थी। प्यास अलबत्ता थी। प्यास उनको काफी तकलीफ देती थी। पानी वह पी नहीं सकती थी, क्योंकि पानी के लिये पेट में जगह न थी। पानी उनको चटाया जाता था। प्यास बुझाने के

लिये पेटपर बरफ का डला फेरा जाता था या कभी कभी होठों पर पानी चुपड़ दिया जाता था। पहली दिसम्बर से उनको अपनी मौत का ज्ञान होने लगा। उनके होश हवास ठीक थे, इसीलिये उन्होंने अपना पाठ करना शुरू किया। जोर से बोलने की कोई ताकत उनमे न रह गई थी। तकलीफ की वजह से मनको पाठ में लगाने में बहुत कोशिश करना पड़ती थी, पर उन्होने कभी किसी से यह नही चाहा कि कोई उनके लिये पाठ करे। किसी और को यह बात सूझी भी नही। उनकी परिचर्या में कोई कमी नहीं हुई। चौवीसो घटों एक नही, दो-दो तीन-तीन आदमी उनके पास मौजूद रहते। हा, इस बात का परेखा उनके बेटे-बेटियों के जी में रह गया कि उन्हे डॉक्टरी सहायता वैसी न मिल सकी जैमी मिलनी चाहिये थी। पर इस मामले मे हमारा खयाल है कि वह अगर मिलती तो कोई खास नफा न होता। हो सकता है, उस मदद से रामदेवीबाई का मानसिक दुख और बढ़ जाता। हम देखते थे, उनके गले के नीचे पानी नही उतर सकता था। यह नही कि उनके गले में कोई खराबी थी, सिर्फ इस वजह से कि पेट में जगह न थी, फिर हकीमो, वैद्यों, डाक्टरों की दवा कौन पीता? हम यह देखते थे कि उनके लिये जब कोई दवा आती तो उसके बारे में मामूल से ज्यादा पूछताछ करती। कुएं के पानी की प्रतिज्ञा होने की वजह से कोई पतली दवा वह पी न सकती और फिर दवाओ के लिये पेट में जगह कहाँ थी? एक ऑपरेशन बच रहा था जिसके बारे में उनके बेटे के दोस्त डॉक्टर की यह राय थी कि इस हालत में ऑपरेशन करना मौत बुलाना है। अब डॉक्टरो की मदद ली जाती तो इससे ज्यादा क्या हो सकता था कि कि मौत ५ दिसम्बर को न होकर १-२ दिसम्बर को हो जाती। हमारी राय है कि डॉक्टरी मदद न मिल सकी इसमें रामदेवीबाई की आत्मा के लिये कुछ अच्छा ही रहा। उनके बेटे-बेटियों का परेखा बेकार।

दो-तीन दिन से उनका यह हाल था कि एक दो बूद [illegible]
जाता था, पर निकलती एक बूद न थी। [illegible] ५ दिसम्ब[illegible]
[illegible] एक उल्टी हुई। उल्टी करने के [illegible]

उन्होंने खराब नहीं होने दिया। उल्टी से उनको काफी आराम मिला। घंटे घंटे भर बाद उल्टियाँ आने लगी, वह हर बार उठती और उल्टी किसी बर्तन में ही करती। कोई कपड़ा कभी खराब न होने देतीं। शाम तक ५-७ उल्टी जरूर हुई और हर उल्टी पर उनको तवीयत में बहाली आई। सबको तसल्ली हुई। रामदेवीबाई को खुद भी आराम मालूम हुआ। पर उन्होंने कभी कोई बात ऐसी मुंह से नहीं निकाली जिस से यह टपकता हो कि अब उनको मौत का डर नहीं रहा। होशहवास उनके बिलकुल दुरुस्त थे। बोलती न थी, इशारा करती थी, कुछ पूछने पर बोल भी देती। रात को ९ बजे को उल्टी के बाद उनको हल्कीसी बेहोशी आई। उस बेहोशी को देखकर हमारा मन एकदम बोल उठा कि अब यह रातभर जिन्दा नहीं रह सकती। हमने फौरन उनके बेटे को अपने मन की बात कह दी और हमें अपने अंदाजे पर इतने जोर का विश्वास हुआ कि हमने उनकी लड़कियों, उनके दामाद, उनकी नातिनों सबको बुला भेजा, जो उन दिनो सबके सब दिल्ली थे। उन्हें समझा दिया कि अब रामदेवीबाई यह रात किसी तरह नहीं निकाल सकती पर उनके पास बैठकर किसी को घबड़ाने की जरूरत नहीं। वह सब मान गये और उनके पलंग के आसपास सब चुपचाप आकर बैठ गये। दस बजे तक उनका सारा कुटुम्ब जो दिल्ली में था इकट्ठा हो गया। आश्रम की वह दो एक छात्राये मौजूद थी, जिनको लेने अभी कोई न आ पाया था। छोटी लड़कियों को छोड़ सभी जाग रहे थे।

९ बजे की उल्टी के बाद दो उल्टी और हुई। हर उल्टी के बाद मिनिट दो मिनिट के लिये बेहोशी आती थी। वह बेहोशी हमसे हर बार यह कहती मालूम होती थी कि अगली बेहोशी देखने को न मिलेगी। रामदेवीबाई को हर उल्टी से तकलीफ जरूर घटती थी, पर इस तकलीफ की घटवारी का आनन्द उनकी देह भले लेती हो, उनका आत्मा नहीं लेता था। आत्मा देह छोडने का पक्का इरादा कर चुका था। उनका बेटा जैनेन्द्र माँ को भक्ति में डूब कर इस बात से नाराज था कि वह उल्टी करने के लिये बार बार उठती क्यों है, क्यो नहीं पड़े पड़े उल्टी कर लेतीं, जब कि उनकी सेवा के लिये इतने आदमी मौजूद है और वह खुद मौजूद है। एकाध बार उसने इसी बात को लेकर अपनी माँ को झिड़का भी, पर

२८ ।झिड़की का रत्तीभर असर रामदेवीबाई पर नहीं हुआ। भला-बुरा कुछ असर होता तो हम जरूर ताड़ लेते। हम नहीं समझते कि हम में उस वक्त योग्यता कहाँ से आ गई थी कि हम हर वक्त उनके हर हिलन-डुलन से उनके मनका भाव ताड़ लेते थे। आखिर उसी ५ दिसम्बर को ११ बजकर ३५ मिनिट पर वह फिर उल्टी के लिये उठीं और उठते उठते उन्होंने हमें और अपने बेटे जैनेन्द्र को कुछ इशारा किया। हम दोनों दायें बायें बैठे थे। उस इशारे का मतलब हम यही समझे कि हमें वह बिलकुल अपने पास चाहती है। हम दोनों पास आगये। उनके बेटे जैनेन्द्र ने फिर वही प्यार की झिड़की दी और यही लफ्ज कहे, 'आप बार बार क्यों उठती हैं ?' यह बातें जो हम लिख रहे हैं, लिखने में जितना समय लगा है या पढ़ने में जितना समय लगेगा उससे कम समय में यह सब काम हो गया था। यानी इन सब बातों में सिर्फ इतनी देर लगी, जितनी देर में उनका सर तकिये से इतना ऊँचा उठा कि वह आसानी से उल्टी कर सके, पर उल्टी नहीं हुई, मुंह खुला का खुला रह गया, आँखें खुली रह गईं। यह देख उनके बड़े दामाद तुरन्त उठे और उन्होंने उनका मुँह बंद कर दिया और आँखे ढंक दी। सबसे पहिले वही समझे कि रामदेवीबाई की मौत हो गई। उनको पलंगपर लेटा दिया गया और जल्दी ही उनको जमीन पर ले लिया गया, रजाई उढ़ा दी गई। मौत के दूसरे क्षण ही रोना-पीटना शुरू हो गया जो हमारी राय में बिलकुल बेकारसी चीज थी। पर रिवाज और रिवाज के बलपर पैदा हुए मनोभावों को कोई क्या करे। उनकी मौतपर सिर्फ तीन आदमी नहीं रोये। एक हम, एक उनका बेटा जैनेन्द्र, और तीसरी उनकी नातिन शकुंतला। रोने पीटने में सबसे अव्वल रही उनकी लड़की सुभद्रा और दूसरा नम्बर दिया जा सकता है उनकी नातिन ज्ञान को। जितनी बाइयाँ उस समय वहाँ मौजूद थी वह सब रोईं और जितने मर्द मौजूद थे उनकी आँखो में आंसू थे।

उनकी नातिन शकुन्तला क्यों नहीं रोई, यह हम कुछ न समझ पाये और आज भी नहीं बता सकते। उससे हमने पूछा भी था पर जो उसने बताया वह हमें अधूरा मालूम हुआ, हमें जँचा नहीं। जैनेन्द्र के न रोनेकी बात हम खूब समझते है। वह बेहद दुखी था, पर उसका दुख पानी

चननेकी बजाय आग बना हुआ था। अिस आगने क्रोध का रूप ले लिया था, फिर आंसू कहां से बहते? यह क्रोध उसका किसपर था इसे हमें बताने की जरूरत नहीं। वह उसको खुद ही अपने "माताजी" नामके लेखमें साफ साफ खोलकर बता चुका है। रही हमारे न रोने की बात, उसके जाननेकी पढ़नेवालोंको जरूरत नहीं।

रामदेवीबाई की मौत के साथ हल्की बारिश आने लगी। मौत और बारिश साथ साथ आये। शकुंतलाने आंगन में पड़े कपड़े उठाना, अपनी नानी की मौतपर रोने से ज्यादा जरूरी समझा। बारिश अेक दो मिनिट से ज्यादा न रही। बारिश खत्म होने के बाद जैनेन्द्र फौरन कागज कलम दवात लेकर अपनी मां की लाश के पास दिल्ली के पत्रों को चिट्ठी लिखने बैठ गया। यह चिट्ठियां १२-१० बजे तक दैनिक पत्रों के दफ्तरों में पहुँच गई। अगर यह पत्र न भेजे गये होते तो हो सकता है सुबह रामदेवीबाई की रथी उठते वक्त इतने आदमी मौजूद न होते जितने थे।

जमना के किनारे जब चिता जलाई गई तो चिता जलने के थोड़ी देर बाद चितामें से अेक पानी की धार निकली जो चिता से दो-तीन गज ऊँची चली गई। वह कई मिनिटतक फव्वारे की तरह चितापर गिरती रही। स्मशानपर पत्रों के अेडीटर और संवाददाता मौजूद थे। वह इस बात को ले उड़े। चितामें से धार निकलने की बात पत्रों में जगह पा गई। हो सकता है, पत्र पढ़नेवालोंने इसे कोई चमत्कार समझा हो, पर वह अैसी बात न थी। रामदेवीबाई को जलोदर की बीमारी थी, जलोदर यानी पेटमें पानी भर जाना। उसी जलोदर के लिये डॉक्टर ने पेट में सूराख किया था। उसी सूराख से आग की गर्मी पाकर पेट का पानी धार बनकर निकलने लगा और छोटा सूराख होने की वजह से और दबाव की ज्यादती से वह ऊंचा गया और देर तक निकलता रहा।

६ दिसम्बर को शाम के वक्त रामदेवीबाई के फूल रिवाज के अनुसार जमना में बहा दिये गये और रामदेवीबाई की जीवन-लीला सपन की चीज बन गई।

: ६ :

बाबू दयाचंद्र गोयलीय

सन् १९१० से पहले समाज सुधार और धर्म-शिक्षा फैलाव के लिए कई लोग कोशिश में थे, उन्हें कुछ सफलता मिली थी, पर आज जो धर्म-शिक्षा का प्रसार जगह-जगह फैला हुआ है, यह इतना फैला न मिलता अगर समाजने बाबू दयाचन्द्र गोयलीय जैसा सेवक न पाया होता।

मुजफ्फरनगर जिले के छोटे से गाँव गढ़ी अब्दुल्लाखां में उनका जन्म हुआ। उनकी बचपन की तालीम वहीं आसपास मुजफ्फरनगर और मेरठ में हुई, बी. ए. उन्होंने जयपुर कालेज से किया। यह जानकर अचरज होगा कि हिन्दी की उन्होंने कहीं तालीम न पाई थी, उसे अपने आप सीखा था वह तब, जब वह समाज सेवा के मैदान में आए। समाज-सेवा का काम उन्होंने उस वक्त शुरू किया, जब वह कालेज में दाखिल हुए। बी. ए. में उन्होंने फ़ारसी ले रखी थी। यह हम इसलिये लिख रहे हैं कि उर्दू-फ़ारसी पढ़े किसी हिन्दू को हिन्दी सीखने में बेहद आसानी होती है और जल्दी सीख ली जाती है। जल्दी ऐसा आदमी हिन्दी के साहित्यकारों में अपनी जगह बना लेता है, वजह यह है कि हिन्दू का धर्म हिन्दी में होने से धर्म सम्बन्धी खास-खास शब्द उसे पहले से आते होते हैं और पुराण की कथाएँ उसे अपनी नानी, दादी, बुआ-बहनों से हिन्दी के शब्दों में सुनने को मिलती रहती हैं, इस तरह हिन्दू को उर्दू फारसी- रंग में आ जाती है। बाबू दयाचन्द्रजीने हिन्दी का अभ्यास जयपुर में बढ़ाया और श्री अर्जुनलालजी सेठी की जैन-शिक्षा-प्रचारक समिति में काम करने से धर्म-ज्ञान में ऊँचे दर्जे की जानकारी हासिल कर ली। कुछ दिनों में वहाँ के परीक्षा बोर्ड के मेम्बर बन गये और जल्दी ही रजिस्ट्रार हो गये।

हम पूरे छः महीने जयपुर में उनके साथ रहे हैं। जब भी हमें उनकी याद आती है तब उनकी पढ़ाई के ढंग की और पढ़ाई के साथ-साथ उनके

काम करने की पूरी तस्वीर हमारी आँखों के सामने आ जाती है। बी. ए. के इम्तिहान के तीन माह रह गये पर वह परीक्षा बोर्ड की बैठकों में जाने से कभी न चूकते, इम्तिहान के पर्चे तैयार करने में उन्हें कोई अड़चन न होती। परीक्षा बोर्ड के रजिस्ट्रार के नाते उन्हें जगह-जगह पर्चे भेजने म कभी देर न होती, पर्चे भेजने का काम कितना नाजुक होता है और किस होशियारी से करना पड़ता है इसका अन्दाजा वे लोग लगा सकते हैं, जो कभी रजिस्ट्रार रहे हैं। फिर वह किसी सरकारी परीक्षा यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार तो थे नही, वह तो एक समाजी घरेलू यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार थे। न उन्हें कोई चपरासी मिला हुआ था, न कोई पूरे वक्त वाला लिखारी (लेखक)। लिखारी का बहुत-सा काम व चपरासी का सारा वह खुद करते। बी. ए. के इम्तिहान के अब दो महीने रह गये हैं, पर वह पढ़ाई के काम के साथ साथ समाजी कामों मे कम-से-कम दो घण्टे जरूर जुटते हैं। कालिज की गैरहाजिरी कभी नही करते, कल बी. ए. का इम्तिहान शुरू होनेवाला है, उनके काम के तरीके में कोई अन्तर नहीं। यह सब होते बी. ए. में अच्छे नम्बरों से और अच्छे डिवीजन मे पास हुए। यह थी सच्ची लगन और इस लगन का यह नतीजा होना ही था।

होता, कि ऐसा जवान ज्यादा दिन जीता। ऐसा होता तो न जाने समाज को कितना फायदा पहुँचा होता। बी. ए. करने के बाद कुछ दिन ललितपुर में मास्टरी की, वही से विवाह किया और एक दुधमुहाँ बच्चा और विधवा छोड़कर इस दुनिया से जल्दी चलते बने। क्या मास्टरी की हालत में, क्या बीमारी के पलंग पर, हर वक्त और हर जगह उनका कलम चलता ही रहा। उनकी विचार-धारा उसी वेग से बहती रही। लखनऊ में जब वह मौत के बिस्तर पर लेटे हुए थे, तब हम उनसे मिले। मौत का बिस्तर हम कह रहे हैं, उन्होंने एक क्षण के लिए अपने आप को मौत के बिस्तर पर नहीं माना, न ही समझा और न ही वैसा करने दिया। हमसे उन्होंने एक मिनट भी न अपनी बीमारी की बात की, न और कोई कमजोरी की बात की। जो चर्चा रही वह इस बात की रही कि हम

उस दिन लखनऊ की आम सभा में क्या बोलनेवाले हैं। हमे अचरज है ऐसे आदमी को मौतने अपने पंजे में फँसाने के लिये कौनसा वक्त निकाला होगा ! हमारा विश्वास है, मौत उसके पास आते डरती है, जो मौत से नही घबराते, जो मौत की बात कभी नहीं सोचते। कुछ भी हो यह सच है कि मौत उन्हे ले गई, कैसे ले गई ? कौन जाने ?

उम्र के इस छोटे से हिस्से में न जाने उन्होंने क्या कर डाला। दो सौ-ढाई सौ सफे की 'मितव्ययता' एक किताब लिख डाली। धर्म की तीन छोटी पुस्तकें लिख डालीं, जाति-प्रबोधक नाम का एक पर्चा सफलता-पूर्वक चलाकर दिखा दिया। जगह-जगह जाकर प्रचार किया, क्योंकि लिखने के साथ-साथ बोलने का कमाल भी उनमें था। जवान थे, जोशीला बोलते थे, पर मनोहर बोलते थे।

सुनिए, वह ऐसे घराने में पैदा नही हुए थे, जो पढ़ाई का खर्चा बरदाश्त कर सकता, शायद इसी वास्ते वह मामूल से ज्यादा मेहनती और बुद्धिमान थे। एक से ज्यादा बार उन्होंने अच्छे दरजे में पास होकर वजीफा यानी छात्रवृत्ति पाई। जैन अनाथालय के संस्थापक चिरंजीलालजी ने इस मामले मे उनकी थोड़ी-बहुत मदद की, रायबहादुर मोतीसागरजी के बहनोई भाई मोतीलालजी भी दो साल तक या शायद कुछ ज्यादा उनको छात्रवृत्ति देते रहे। यहाँ यह बात जानना जरूरी है कि छात्रवृत्ति उन्हे दान के रूप में नही मिली थी, उधार थी। चुकाने के लिये कागज लिखा था, शर्त थी कि वह छात्रवृत्ति उस वक्त चुकाई जायगी, जब बाबू दयाचन्द्रजी कमाने लगेंगे, वह १०० रु० के पीछे १० रु० के हिसाब से चुकाई जायगी। कोई यह न समझे कि भाई मोतीलालजी वसूल करने में बड़े कड़े आदमी थे। भाई मोतीलालजी के आगे-पीछे कोई न था। वह अपना रुपया ऐसे ही कामों में खर्च किया करते थे। वह इस तरह दी हुई छात्रवृत्ति को उघाकर कुछ अपने काम मे नहीं लाते थे, किसी दूसरे को देनी शुरू कर देते थे। इस तरह उनकी सख्ती चुकानेवाले को भले ही थोड़ी अखरती हो, पर और किसी को नही अखरती थी और न हमारे

पढ़नेवालों को अखरेगी। इतनी लंबी-चौड़ी वात हमने यों ही नही कही। हमारे कहने की वजह है। वावू दयाचन्द्रजी के साथ उन्होंने काफी सख्ती की थी। उनकी सख्त चिट्ठी हमने अपनी-आँखों देखी थी, उसको पढ़ी थी। वा० दयाचन्द्रजी ने मास्टर होने के कुछ दिन वाद शादी कर ली थी। शादी करने के कुछ दिनों वाद, शायद जवतक वहू की मेंहदी फीकी न पड़ी होगी, यह चिट्ठी दयाचन्द्रजी के नाम ललितपुर मे आ धमकी। पूरी चिट्ठी हमे याद नही, पर वे लफ्ज हमारे दिलपर ज्यो-के-त्यों अंकित है "वजीफे की (छात्रवृत्ति की) रक़म अदा किये वगैर आपको शादी करने का कोई हक न था" यह चिट्ठी उर्दू में थी। भाई मोतीलालजी उर्दू में चिट्ठी लिखा करते, पढ़नेवालो पर जरूर यह असर पड़ेगा कि भाई मोतीलालजी वड़े सख्त थे। हम पर उस वक्त ऐसा ही असर पड़ा था, पर वावू दयाचन्द्रजी ने अपना मन ज़रा मैला न किया, हमसे वोले, उनकी शिकायत ठीक है, सचमुच मुझे विना रुपया अदा किये ऐसा नहीं करना चाहिए था। यह मुझे ठीक याद नही, उन्होंने कोई चीज़ गिरवी रखकर या यों ही मामूली कागज लिखकर उसी वक्त किसीसे रुपये उधार लिये और जितने महीने उन्हें नौकरी करते हुए थे १० रु० फी महीने के हिसाव से मनिऑर्डर से भेज दिये। ये थे वावू दयाचन्द्र। त्याग पैसे का त्याग नही होता, असली त्याग है हृदय की मलीनता का, वही सच्चा त्याग है; वा० दयाचन्द्रजी नौकरी करते और गृहस्थ होते सच्चे त्यागी थे।

हमारी उनसे वहुत एकमेकता थी, जयपुर मे हम एक कमरे मे रहे थे। हम वहाँ छात्रालय के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे और वावू दयाचन्द्रजी छात्रालय में रहने के नाते एक छात्र थे और हमारे मित्र थे। हमें वहाँ ख़ुजली हो गई, एक अँग्रेजी सफेद ज़हरीली दवा गोले के तेल में घोल कर हमारे वदनपर मलने के लिए डाक्टर ने दी। उसके लिये डाक्टर की हिदायत थी कि इस दवा को जो कोई लगायेगा, अगर उसका एक कण भी मुंह के रास्ते पेट में पहुँच गया तो लगानेवाले के खुजली हो जाने का डर है। यों तो छात्रालय के सभी छात्र हमसे वेहद मुहव्वत करते थे,

पर श्रीचन्द्र नामी एक छात्र बहुत मुहब्बत रखता था। छात्रों में से कई दवा लगाने के लिए तैयार हुए वह हमारे मना करनेपर मान गये, श्रीचन्द्र हठ कर बैठा; वह हमारा सब से ज्यादा आज्ञाकारी था; इस मामले में उसने हमारी एक न मानी। दवा गोले के तेल में घोल ही तो डाली, हाथ भिगो लिये। इतने मे पंडित अर्जुनलालजी सेठी आ गये। उन्होंने जब फटकारा, तब वह माना। श्रीचन्द्र के होशियारी से हाथ धुलवाये गये और न मालूम और क्या क्या किया गया। यह किस्सा चल रहा था कि बाबू दयाचन्द्रजी आ पहुँचे। सेठीजी ने बहुत रोका, हमने पूरा जोर लगाया पर उनके कानपर जूँ न रेंगी। उन्होंने न जवाब दिया, न बोले, बस पकड़ हमारा हाथ और लगे दवा मलने। दवा मल चुकने के बाद बहुत होशियारी से उन्होंने अपने हाथ धोए, जिसे अगर और कोई देखता तो यही कह बैठता, "जब तुम दवा से इतना डरते हो तो लगाने का शौक क्यों चढ आया"। पाठक यह खूब समझ ले, हाथ दवा से डर कर नही धोए जा रहे थे, धोए जा रहे थे, दवा लगाने के बाद मुझे खाना खिलाने के लिये। उनको उन्ही हाथों यह काम करना था। यह सब इस ख्याल से किया जा रहा था। यह थी बाबू दयाचन्द्रजी की प्रेम सेवा। ये सब बातें धर्म-प्रेम बिना नही आ सकती, और धर्म-प्रेमी सीखना नही पड़ती।

२२ जनवरी १९१० को हम गुरुकुल खोलने का व्रत ले चुके थे। अपना जीवन उस काम के लिये सौंप चुके थे, पर अर्जुनलालजी सेठी उस वक्त समाज में गुरुकुल नाम से एक नई संस्था खोले जाने की जरूरत नहीं समझते थे। वह नही चाहते थे कि उनकी शिक्षा समिति हमारी सेवाओं से वंचित हो जाय। उनकी तजवीज थी कि जयपुर मे ही कही किसी जगह हमारा व्रत इस तरह पूरा कर दिया जाय, जिस तरह लार्ड कर्जन ने उदयपुर महाराणा की दिल्ली फतह करने की प्रतिज्ञा, मिट्टी की दिल्ली बनाकर कर दी थी। मई से नवम्बर तक हमको सेठीजी इसी तरह टालते रहे। १० नवम्बर १९१० को बाबू दयाचन्द्रजी ने हमें, दरवाजा बन्द करके एक घंटे भारी ऊँच-नीच समझाई। इतना सीधा, नम्र और जोश

भरा उपदेश दिया कि दूसरे दिन यानी ११ नवम्बर को हम जयपुर से निकल पड़े। १९११ की अक्षय तीज को, यानी छ महीने वाद, गुरुकुल की स्थापना हो गई।

वाबू दयाचन्द्रजी हमारे दोस्त थे। अव तक के हाल से पढनेवालों ने समझ लिया होगा कि हमारे साथ उनका कितना अपनापन था, फिर भी वह अपने गहरे-से-गहरे मित्र के साथ खरी बात कहने में नही चूकते थे। सच्ची बात, कितनी ही कडुवी क्यों न हो, कहते न रुकते। कोई यह न समझ बैठे कि उनका उपगूहन अङ्ग कच्चा था, वे दूसरों की बुराई छिपाकर नहीं रख सकते थे! हर धर्मात्मा का फर्ज़ है कि वह दूसरे की बुराइयाँ छिपाये। वह किसी की बुराई किसी दूसरे से न करते। वह उसकी बुराई उसीसे कहते। वह आदत न सुधारे तो उससे अपना संबंध तोड़ लेते। उसकी बुराइयों का कभी गीत न गाते। वह कान के कच्चे थे, इसे यो भी कहा जा सकता है कि वह किसी को झूठा न समझते थे, इसलिए दिल के खरे थे। जो दिल का खरा होता है वह अगर कान का कच्चा हो तो किसी को उससे डरने की जरूरत नही।

अब सुनिए, उनका ग्राम भाई, दीपचन्द्र, जो आज कल कहीं किसी मिल मे मैनेजर है, सन् १९१२ मे हमारे गुरुकुल का ब्रह्मचारी था। लाला गेंदनलालजी का लड़का श्री प्रीतचन्द्र भी हमारे गुरुकुल का ब्रह्मचारी था। होनहार कि, एक दिन दीपचन्द्र के पिता गुरुकुल (ऋषभब्रह्मचर्याश्रम) देखने आये। रात के ९ वजे का वक्त था। जाड़े के दिन थे। सब ब्रह्मचारी लिहाफ़ ओढे सो रहे थे। दीपचन्द्र का लिहाफ़ कुछ हलका था। ऐसा था जैसा और बीसियों ब्रह्मचारियो का था। प्रीतचन्द्र का लिहाफ़ भारी था, और लिहाफों से खूबसूरत था। यह सब देख दीपचन्द्र के पिताने हमसे तो कुछ नही कहा, बा० दयाचन्द्र को खबर दी और कुछ दिनों वाद बा० दयाचन्द्रजी की बड़ी लम्बी-चौड़ी चिट्ठी, वेहद कडुवी, दसियों फटकारों से भरी, हमारे नाम हस्तिनागपुर आ धमकी। धमकियों के साथ सम्बन्ध तोड़ने की धमकी थी, यह सुनकर पाठक हैरान रह जायेंगे कि जवाब

नही माना गया था। यह समझिये, वह हाईकोर्ट का आखिरी फैसला था, पर हमने जवाब देकर उनकी तसल्ली कर दी, उनसे यह चाहा कि वह खुद आकर हमारी बात की जाँच कर लें और देख ले कि हम जो कुछ कह रहे हैं ठीक है या नही। लौटती डाक से जवाब मिला, मैं आपकी बात बिल्कुल ठीक समझता हूँ, पर आपने यह क्यों लिखा कि मैं खुद आकर वहाँ उसकी जाँच करूँ। क्या आपको अपने पर विश्वास नही? यह थे बा० दयाचन्द्र! कितने खुले दिल, कितने खरे, कितनी मन्द कषाय वाले! अब ऐसे साथी कहाँ नसीब है!

बा० दयाचन्द्रजी सिर से पैरतक धर्मात्मा थे, इसलिए सच्चे सुधारक थे। उन्होंने आर्य समाजी लड़की से शादी की, बेकार रस्मरिवाजों को अपनाने के लिए तैयार न हुए। हाँ, एक बार अपनी धर्मपत्नी के कहने से अपने बच्चे के सख्त बीमार होने पर झाड़-फूंक की सिर्फ इजाजत ही न दी, खुद झाड़-फूँक करनेवाले को बुलाकर लाये। पढ़नेवाले यह न समझें कि वह झाड़-फूंक में विश्वास रखते थे। उन्होंने यह काम सिर्फ अपनी धर्मपत्नी के विचारों में आड़े न आने के लिए किया था। वह ज्ञानी आदमी थे, मनोविज्ञान से वाकिफ़ थे। वह खूब समझते थे कि माँकी कमजोरी का दुधमुँहे बच्चे पर असर पड़े बिना न रहेगा। इसलिए उनका झाड़-फूंक की इजाज़त देना विश्वास की कमजोरी नही, मजबूती का सबूत है। अगर वह हठ कर जाते तो धर्मपत्नी मान तो जाती पर दुख जरूर मानती, वह हिंसा होती।

विधवा-विवाह की आवाज उनसे पहले उठी थी, पर उसमें दम न था। बाबू दयाचन्द्रजीने इस आवाज़ को अपने ढंग से उठाया। वह कुछ उम्र पाते तो इस तरफ़ कुछ ज़रूर कर के दिखा जाते।

हम राजकारन के मैदान में कूद चुके थे। उन दिनों ऐसा करना अपने रिश्तेदारों और अपने दोस्तों की नज़रों में गिरना था। और तो और भाई अजितप्रसादजी को, जो हमारे मारशल्ला के मुक़दमे में हमारे वकील थे, करनाल में ठहरने के लिए जगह मिलना मुश्किल हो गया था। आखिर एक वकील ने बड़ी हिम्मत कर के उन्हें अपने घर पर ठहराया था।

बा० दयाचन्द्रजी राजकारन के मैदान में नही आये, पर उन दिनो राज-कारन में कूदना भले ही कुछ बड़ा काम हो, पर राजकारन में कूदनेवालों से दोस्ती बनाये रखना और खुले दिल खुल्लम खुल्ला अपने घरमें उनका स्वागत करना यह और भी कहीं बड़ा काम था। इस विचार से हम यह कहेंगे कि बा० दयाचन्द्रजी राजकारन के मैदान में न कूदकर भी राज-कारन में कूदे जैसे थे। हमसे मिलने मे वह कभी नही झिझके, हमारी बातों को ध्यान से और शौक से सुना और हमे सलाह दी। जो सलाह दी वह हमें अपने रास्ते से अलहदा करनेवाली न थी। रास्ते पर मजबूती से डटा रखनेवाली थी।

मामूली घराने का जवान, पूरा गृहस्थी और फिर इतना निर्भीक और निडर; धर्म, समाज और देशप्रेम में भीगा, उसके लिए ज्यादा से ज्यादा वक्त निकालकर हर तरह काम के लिए तैयार, विरला ही कोई होता है।

सचमुच बा० दयाचन्द्र की जिन्दगी ऐसी है जिसका अनुसरण आज-कल के जवान करे तो समाज, धर्म और देश के लिए बड़े उपयोगी बन सकते हैं।

: ७ :

जुगमंदरलालजी

ठीक सन् नही याद, शायद १९१३ और १७ के वीच का हो। जगह के वारे मे शक है, हो सकता है सहारनपुर हो, रुड़की रही हो। हम किसी काम से जुगमंदरलाल्रजी से मिलने पहुंचे। जव हम पहुँचे तव वह किसी अंग्रेज अफसर से वाते कर रहे थे। जैसे हम कमरे में पहुँचे उन्होंने फौरन उस अंग्रेज अफसर से अंग्रेजी में कहा 'मै समझता हूँ मैने आपका वहुत वक्त ले लिया। अब मै अपने दोस्त से वात करूँगा।' यह थे हमारे स्वाभिमानी जुगमंदरलाल।

हमारे पढ़नेवाले यह न समझें कि उनके पास वह अंग्रेज मुवक्कल की हैसियत से आया था। नहीं, वह उनका विलायतका दोस्त था। अगर हम गलती नही करते तो वह जरूर जिला मजिस्ट्रेट था। सन् १२-१३ मे छोटे मोटे राजाकी यह हिम्मत न हो सकती कि अपने किसी वड़े से वडे दोस्त की खातिर किसी अंग्रेज को वीच में विदा दे सके।

हमे यह देख, खुद अचरज हुआ। उस अंग्रेज के चले जाने के वाद हमने उनसे पूछा, आपने हमारी खातिर इस अंग्रेज को वेवक्त विदा करके कोई आफत तो मोल नहीं ली? वह वोले, नही नहीं, मैं वरसों विलायत रहा हूँ, अंग्रेजी स्वभावको खूव पहचानता हूं। मैने वहां किताबें कम पढीं, अंग्रेजोंका स्वभाव ज्यादा पढ़ा। यह अंग्रेज वुरा नही मान सकता, पर, हां, इसके साथ ऐसा वर्ताव कोई और वैरिस्टर करे तो यह उसको आफत करदे और अगर कोई रईस कर वैठे तो उसका जीना मुश्किल हो जाय। अंग्रेज वेवकूफ नहीं होता। मामूली अंग्रेज आय. सी. एस. का इम्तिहान पास नहीं कर सकता और जो अंग्रेज पास कर लेता है उसे थोड़ा-वहुत मनोविज्ञान आता ही है। वह यह पहचानता है कि किसमें कितना

स्वाभिमान है । वह किसीके स्वाभिमान से टक्कर नही लेता । हर अग्रेज यह खूब जानता है कि हिंदुस्तान के रईसों में से बहुत कम में स्वाभिमान रह गया है । यही हाल वकीलो और बैरिस्टरोंका है । कोई अंग्रेज सबके साथ एकसा बर्ताव नही करता । उसको आदमीको पहचानने में देर नही लगती । भगवानदीनजी, हिंदुस्तान में अब स्वाभिमानी लोग नही रह गए और अंग्रेज बीन बीन कर उन्हे खतम कर रहा हैं । इसमें दोष अंग्रेजका नहीं, हम सबका है । मैं स्वाभिमानी हूं, अंग्रेज मेरे स्वाभिमान के ढाने की कभी नही सोचता । अग्रेज स्वाभिमान और स्वाभिमानी की कदर करता है । मै कई कलेक्टरो से मिला हूं । वह इन बम फैंकनेवालोंको बड़ी तारीफ करते है । उनको वह उन रईसो से बहुत ऊचे दर्जे का समझते है जिनको वह बड़े बडे खिताब देते हैं । यह दूसरी बात है कि उन बम फैंकनेवालों को उन्हें फासीपर चढाना पड़ता है; पर फासीपर चढाते दुख मानते है । भगवानदीनजी, यह सुनकर तुम्हे अचरज होगा कि मैं एक ऐसी मेम से मिल चुका हूं जिसके पति को एक बम फेंकनेवाले ने खतम किया था । वह भी यह कह बैठी कि इतनी छोटी उम्र के लड़के जब देश की खातिर हथेलीपर-जान लिए फिरते हैं, तब हम लोगो का हिन्दुस्तान में रहना मुश्किल है । उसीका यह कहना था कि हम अग्रेज, लोगों को खिताब दे देकर गुलामी की याद भुलाए रखना चाहते है, पर ये दीवाने तो कुछ चाहते ही नही । भगवानदीनजी, अब आप कहिए, मैंने इस अंग्रेज को विदा करके कोई आफत मोल ली या कि और इज्जत कमाई ? मुझे पक्का विश्वास है कि यह अंग्रेज आजही जाकर अपनी मेम से जिक्र करेगा कि आज मेरे हिंदुस्तानी दोस्तने अपने एक भिखमंगे दोस्त की खातिर मुझे विदा दी । यह खूब समझ लीजिए मै इस अग्रेजकी नजरमें गिरा नही, उठा हू । भाई भगवानदीनजी, इसी स्वाभिमान को मै ढूढ़ता फिरता हूँ और यह हिंदुस्तान मे बहुत कम पाया जाता है । मैं इसी के बीज बोना चाहता हू और जब मैं ऐसा करता हू तो लोग मुझे घमडी समझते है ।

हमने जुगमंदरलाल को ऊपर से देखने की कभी कोशिश नहीं की, हमारी यह आदत नही । हमारा विश्वास हो गया है कि अदर की आग बाहर के ढोग को रखती तो है ही नहीं, उल्टा जलाती है । हमें कोई

मिला जिसने जुगमंदरलालजी के बारे में यह शिकायत की हो कि उन्होंने मेरे साथ यह बुराई की। पंडित गोपालदासजीने जो बात जुगमंदरलाल के खिलाफ सिद्धवरकूट के प्लेटफॉर्म से कही उस में पंडित गोपालदास को जुगमंदरलाल से अपनी कोई शिकायत न थी, उन्होंने जो कुछ कहा वह सुनी हुई बातें थीं, उस में कुछ विलायत की थी। एक आदमी नई शादी करता है और इस नाते वह बहुत वक्त अपनी औरत के साथ बिताता है, लेकिन अगर वह सब काम छोड़कर अपने दोस्तों से मिलता है और पहले से ज्यादा खातिरदारी करता है तब किसी दोस्त को यह शोभा नहीं देता कि वह अपने उस नए शादी करनेवाले दोस्त को स्त्री-भक्त कहकर चिढ़ाए, और यह समझे कि वह बिगड़ गया है। जुगमंदरलालजी के बारे में हमने लोगों से जितने आक्षेप सुने वह सब के सब लचर और पोच मिले। उन्हीं लोगों के मुंह से सुनने को मिले जिन में से बहुतों ने तो उन्हें कभी देखा भी न था, कुछ ने दूर दूर से देखा था। बाकी में से भी किसीने उन्हें बहुत पास से नहीं देखा।

हम बारगांव ऐसे आदमियों से परिचित हैं जो आज जीवित हैं। वह जुगमंदरलालजी को पहले बहुत बुरा समझते थे, पर जब उन के बिलकुल [illegible] आए तो [illegible] लगे। हमारे सामने उनके डरा तरह [illegible] [illegible]ोई देवता हो।

मिलते थे दिल खोलकर मिलते थे। [illegible]
पर नहीं [illegible]
[illegible]

जुगमंदरलालनें नाटक समयसार सिर्फ पढ़ा नहीं, उसका अपने ऊपर अभ्यास किया जैसा गांधीजीनें गीता का ।

जिसने जुगमंदरलाल को ऊपर से देखा होगा, हो सकता है, वह उन्हें कुछ का कुछ समझ बैठे, पर जिसनें उन्हें पास रहकर अन्दर से देखा है वह वैसी भूल नहीं कर सकता ।

सिद्धवरकूट में कोई सभा हो रही थी । बाबू सूरजभानजी उप-जाति विवाह पर बोले । उसके जवाब में पंडित गोपालदासजी बोले, न जाने किस सिलसिले में जुगमंदरलालजी पर गन्दे आक्षेप कर गये । इस से खुश होकर सेठ हुकमचंद उछल पड़े, एकदम गोपालदासजी को खोंफी में भरकर बोले 'वाह रे पडित', 'वाह रे पंडित' । जिसका यह मतलब था कि सेठ हुकमचंद उन आक्षेपों से सहमत हैं । यह देख बाबू माणिकचंदजी एकदम उठे और स्वागतकारिणी सभा के मंत्री की हैसियत से बोले, यह शोभा नहीं देता कि उस आदमी की जीवनी पर आक्षेप किये जायँ जो सभा मे जवाब देनें के लिये मौजूद नहीं है । जुगमंदरलालजी न उस सभा मे बुलाये गये थे न उस सभा मे मौजूद थे । यह था समाज के खास खास आदमियों का जुगमदरलालजी का ऊपर ऊपर का अध्ययन । अचरज हमको यह है कि पंडित लोग भी जो पुराणोंको पढ़ते हैं, ठीक ठीक नहीं समझ पाते कि आदमी ऊपरसे कुछ और होता है, अन्दर से कुछ और । किसी आदमी का ऊपर ऊपरका चरित्र देखकर उसके अन्दर के बारे में राय बना बैठना बड़ी भारी भूल है । यहाँ यह सवाल खड़ा हो सकता है कि लाखो आदमियोंमें से किसी एकमे यह योग्यता होती है कि वह किसी को अन्दर से जान सके, बाकी आदमी बाहरसे ही पहचानते हैं, बाहर से उनको काम पडता है, फिर वह बाहरी चरित्र को देखकर अपनी राय न बनावे तो क्या करे ?

सवाल बिलकुल सीधा सादा है । इसका जवाब भी इतना ही सीधा सादा है । बेशक अन्दर से हमें क्या लेना देना, हमें बाहरसे काम पड़ता है बाहर ही देखेंगे और बाहर के आधार पर ही अपनी राय बनायेंगे । हम जुगमंदरलालजी के बारे में यही कहना चाहते है । हमें कोई ऐसा न

भला जिसने जुगमंदरलालजी के बारे में यह शिकायत की हो कि उन्होंने मेरे साथ यह बुराई की। पंडित गोपालजासजीने जो बात जुगमंदरलाल के खिलाफ सिद्धवरकूट के प्लेटफॉर्म से कही उस मे पंडित गोपालदास को जुगमंदरलाल से अपनी कोई शिकायत न थी, उन्होंने जो कुछ कहा वह सुनी हुई बातें थी, उस में कुछ विलायत की थी। एक आदमी नई शादी करता है और इस नाते वह बहुत वक्त अपनी औरत के साथ विताता है, लेकिन अगर वह सब काम छोड़कर अपने दोस्तों से मिलता है और पहले से ज्यादा खातिरदारी करता है तब किसी दोस्त को यह शोभा नही देता कि वह अपने उस नए शादी करनेवाले दोस्त को स्त्री-भक्त कहकर चिढ़ाए, और यह समझे कि वह बिगड़ गया है। जुगमंदरलालजी के बारे मे हमने लोगों से जितने आक्षेप सुने वह सब के सब लचर और पोच मिले। उन्हीं लोगों के मुँह से सुनने को मिले जिन में से बहुतो ने तो उन्हें कभी देखा भी न था, कुछ ने दूर दूर से देखा था। बाकी मे से भी किसीने उन्हे बहुत पास से नही देखा।

हम चार-पॉच ऐसे आदमियों से परिचित है जो आज जीवित है। वह जुगमंदर लालजी को पहले बहुत बुरा समझते थे, पर जब उन के बिलकुल सम्पर्क में आए तो उन्हें साधु बताने लगें। हमारे सामने उनके इस तरह गुण गाने लगे मानों जुगमन्दरलाल कोई देवता हो।

जुगमन्दरलाल जब भी किसी से मिलते थे दिल खोलकर मिलते थे। उनकी नजर कभी आदमी के ऊपरी बर्ताव पर नही पड़ती थी। किसी के ओढ़ावे-पहनावे से उन्हें कोई सरोकार न था। उनका सम्बंध मन और आत्मा से रहता था। वह अपने हर मिलने वाले को यही चाहते थे कि वह दुनिया में ऊचे से ऊंचा आदमी हो सके और अपने ऊपर ऐसा ही काबू पा सके जैसा अबतक कोई भी पाता रहा है। वे तुलसी के 'सब से मिलिये धाय' के सच्चे नमूने थे। तुलसी का दोहा यह है—

तुलसी या ससार मे, सब से मिलिए [illegible]
ना जाने क[illegible] नारायण मि[illegible]

जुगमन्दरलालजी सचमुच वेहद मिलनसार थे। शायद ही कोई ऐसा हो जो उनसे मिला हो और फिर उनका भक्त न बन बैठा हो। उनका जैसा मिलना हमने समाज भर में एक ही में और देखा, वह था पं० गोपालदासजी में। दोनों में अन्तर था। पंडित गोपालदासजी दिगम्बरी थे। जुगमन्दरलालजी दिगम्बररत्न से ऊँचे उठ गए थे। वह नामधारी धर्म की सीढ़ी पर पांव रख कर सार्वधर्म को ताक रहे थे। मरते दम तक उनकी यह अजीव इच्छा रही कि जिस नामधारी धर्म मे उन्होने जन्म लिया है उसी धर्म को सार्वधर्म का रूप दे दें। इसमे शक नही कि हर नामधारी धर्म शुरू के ग्रन्थों में और बहुत ऊँचे ग्रंथो मे सार्वधर्म का रूप लिए हुए मिलेगा। पर जुगमंदरलालजी की इतने से तसल्ली न थी। उनकी एक अजीब कोशिश थी। वह यह कि जिस धर्म में उन्हों ने जन्म लिया उस धर्म के सब आर्ष नाम से पुकारे जाने वाले ग्रथों को वह ऐसा रूप दें कि वह रूप सार्वधर्म से मेल खा जाय। अगर उन्होने ऐसा न किया होता और उन्होने अपनी बुद्धि स्वतन्त्र विचारो के लिखने मे लगाई होती तो वह मनुष्य समाज के लिए बहुत बड़ी चीजें छोड जाते।

हम जब जब उनसे मिले तब तब उन्होने कृष्ण भगवान के जीवन पर ऐसी ऐसी अनोखी बातें बताई कि हम दंग रह गए। अगर उन दिनो आज जैसे हमारे विचार होते तो हम जरूर उन्हे इस तरह सोचने से रोकते और उनको अपनी बुद्धि स्वतन्त्र लिखनें में लगाने के लिए प्रार्थना करते। इससे कुछ मिलती जुलती पर नीचे दरजे की इच्छा बैरिस्टर चपतराय में थी। ऐसी इच्छा हर धर्म वाले मे पाई जाती है। इस इच्छा की तह में ऐसे ही एक लोभ रहता है जैसे चुनाव मे वोट हासिल करने के लिए हिन्दुस्तानियत से उतरकर किसी जात का वन बैठना। इस लोभ से कुछ वोट मिल जाते हैं। ठीक इसी तरह धर्म के लोभ से उन विचारो के पढनेवाले मिल जाते है जो वैसे न मिलते। लोकमान्य अपनी गीता रहस्य का नाम ज्ञान रहस्य रखते तो शायद इतनी कदर न होती जितनी गीता रहस्य रखने से। ठीक यही बात जुगमंदरलालजी में थी। वह यों तो बड़ी अच्छी वात है, पर सर्वधर्म की अपेक्षा ज्यादा अच्छी

नही। जुगमंदरलालजी जिस समाज और धर्म में कार्य कर रहे थे उस समाज के लिहाज से उनका काम हर तरह बढ़िया और ऊँचा था।

जुगमन्दरलालजी स्वाभिमानी थे, पर अभिमानी नहीं। उनका विद्यार्थी जीवन इस बात का सुबूत है। वह अपनी परीक्षाओं में अच्छे नम्बर से पास होते थे, छात्रवृत्तिया पाते थे। और अपने साथी विद्यार्थियों मे इतने हिलमिल कर रहते थे कि किसी को शिकायत का मौका नही मिलता था। जिसे विद्या-मद कहते है वह उनमें था तो, पर न उन्हें सताता था और न किसी को सताने की प्रेरणा करता था। यह ठीक हैं, उन्होने बैरिस्टरी का इम्तहान पास किया, पर वह एक सफल बैरिस्टर की जगह सफल जज ही रहे, क्यों कि विद्या विवाद के लिए है, यह कहावत उनपर लागू नही होती। बैरिस्टरी उनको पास करनी पड़ी। अगर उनकी टांग को चोट न आई होती तो वह कोई दूसरा रास्ता अख्तियार करते। किस्मतने उनको बैरिस्टर बनाया, पर किस्मत उनपर अधिकार न जमा सकी। विद्यार्थी अवस्था के बारे में जुगमंदरलालजी ने हमें दो-चार बातें ही बताईं पर अपनी अध्यापकी, बैरिस्टरी और जजी के बारे मे उनका खयाल था कि वह काम उन्होने इसी तरह किए जैसे नाटक में नट अपने सुपुर्द किए काम करता है। जल में कमल की तरह रहने का अभ्यास उन्होंने अपने अध्यापकी के समय से किया और मरने से दो-तीन बरस पहले वह उस रास्तेपर बहुत दूर जा चुके थे।

विद्यार्थी जीवन में उनमें एक खास बात थी और वह यह कि जब भी उनको कोई नई बात सूझती वह अपने सब साथियों को बता देते। एक से ज्यादा बार ऐसा हुआ कि उनकी सोची हुई बात का फल उनको मिलने की जगह उनके साथी को मिला। उनका कहना था यह ठीक है, उन्होंने कभी इस बात का जिक्र न कालेज में किया न बाहर, पर उन्ही का यह भी कहना था कि यह छोटी छोटी बाते जो अब तक मुझे याद हैं कांटे की तरह खटकती हैं। मैं भुलाने पर भी इन्हें भुला नही पाता और यही मेरी कमियाँ है।

उन्हें अपनी कमियों को देखने का अभ्यास विद्यार्थी-जीवन से शुरू हो गया था, जब वह उस जीवन को सुनाने बैठते, तो उनकी आँखें छल-छला आतीं। वह हम से जब भी मिले इस तरह दिल खोलकर मिले मानों वह चाहते हों कि अपना दिल हमारे दिल मे धर दे। उनका विद्यार्थी जीवन बहुत सुखमय बीता। यह सुनकर आप को ताज्जुब होगा कि जब तक वह विद्यार्थी रहे उनके सब सहपाठी उनके बड़े दोस्त रहे पर कालिज छोडनें के बाद वह उन सहपाठियो से ऐसे अलग हो गये मानों कुछ था ही नहीं। अगर विद्यार्थी जीवन में उन्होंने इस तरह का अभ्यास न किया होता तो वह उस तरह का जीवन न बिता सकते जिस तरह का बिता रहे थे। जो आदमी जल में कमल की तरह रहना जानता है वह आक्षेप बरदाश्त करने में बहुत पक्का होता है और जो आक्षेप बरदाश्त करने में पक्का होता है वह बदला लेने की नही सोचता और जो बदला लेने की नही सोचता वह वही होता है जिसकी क्रोध-मान-माया-लोभ कषायें बहुत दर्जे तक उसके काबू मे होती हैं। जिस आदमी ने अपना विद्यार्थी जीवन इस खूबी के साथ बिताया हो, उसके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं कि वह परीक्षा में ऊँची जगह हासिल करे। विद्या हरएक को मिल सकती है, पर ज्ञान हरएक के हिस्से में नही आता। विद्या मेहनत से कमाई जा सकती है। ज्ञान का मेहनत से कोई सम्बन्ध नही। ज्ञान का सम्बन्ध ऋजुता और सरलता से है। अगर जुगमन्दरलालजी सरल स्वभाव और मंद कषाय न होते तो जो जगह उन्होने कालेज मे बनाई थी वह न बना पाते।

विद्यार्थी-जीवन की तरह उनका अध्यापकी जीवन बड़े आनंद का रहा। उनका कहना था कि वह अपने विद्यार्थियो में इतने हिलमिल जाते थे कि कालेज से बाहर शायद ही कोई यह पहचान सके कि वह जिस विद्यार्थी से बात कर रहे है उसके वह अध्यापक भी है। पर कालिज में वह एक दूसरा ही रूप ले लेते थे। वह रूप कुछ डरावना नही होता था, पर ऐसा जरूर होता था मानों उनमे से कोई चीज निकलकर विद्यार्थियों की तरफ दौड़ी जा रही है। इस सब का यह नतीजा होता था कि

विद्यार्थी और अध्यापक में निकटता आने पर भी कोई ऐसी बात न हो पाती थी जिस से दोनों मे से किसी के स्वाभिमान को धक्का लगे।

जुगमन्दरलालजी का कहना था, अध्यापक के जीवन से मुझे कुछ मोह हो गया था। पर छात्रालय का प्रबन्ध मुझे अखरता था। क्योंकि उसमें मुझे ऐसा मालूम होता था कि मेरे पास छात्रों के लिए कुछ देने के लिए है ही नहीं। यह एक ऐसी खटक थी जिसकी वजह से अध्यापकी के जीवन का मजा कुछ कम हो जाता था। यह काम उन्होंने तीन वर्ष से ज्यादा किया नही।

आक्सफोर्ड के जीवन का हाल सुनाते वह कभी थकते न थे। वह उसमें इतने तन्मय हो जाते थे कि अपने को भूल जाते थे। अपने अंगरेज सहपाठियो का इतना गुणगान करते थे कि कभी कभी हमको अखरने लगता था। हमें अखर रहा है, इसको वह फौरन ताड़ जाते थे। वह कहने लगते 'भगवानदीनजी, तुम्हारी नजरों मे है यहां के अंगरेज जो हिन्दुस्तान की जमीन पर कदम रखते ही कुछ के कुछ बन जाते हैं और कुछ के कुछ बना दिए जाते हैं। यहा के रईसों और अमीरो ने देखा है नवाबी जमाना या देखी हैं हिन्दू रियासते। अगर इन्होंने कभी विलायत जाकर अंगरेजों का जीवन देखा होता तो यह अंगरेजों से इस तरह न मिलते जिस तरह आज कल मिलते है। यह तीन कौड़ी के अंगरेज को लाखों रुपए का बना देते है। इसमे कुसूर अंगरेज का है या हिन्दुस्तानियों का? मजाल है कोई बडे से बड़ा अंगरेज मेरे साथ इस तरह का बर्ताव करे जैसा वह यहां के रईस से करता है और फिर मुझ से यह आशा रखे कि मै उसको शकल दिखाऊंगा, या उसकी शकल देखना पसंद करूँगा?' यह कहते कहते वह बोल उठे, 'आप यह न समझें कि मुझ में तीव्र कषाय है, यह तो मैं कहने के लिए कह रहा हूं, यह बात मुझ से मेरी वह हिम्मत कहलवा रही है जिसे यह पूरा भरोसा है कि उसके रहते कोई अंगरेज मेरे साथ उस बेहूदगी का बर्ताव नहीं कर सकता जो वह आम तौर से यहां के रईसों के साथ कर बैठता है। अंगरेज जिस तरह की जिंदगी हिन्दुस्तान मे बिता रहा है ऐसी अगर इंग्लिस्तान में बिताए तो उसका जीना मुश्किल

हो जाय। हिन्दुस्तानी खुशामद करना जानते हैं और खुशामद चाहते हैं, गुलामी करना जानते हैं और गुलाम रखना जानते हैं। चापलूसी करना जानते हैं और चापलूसी सुनने के आदी हैं। यही सब बातें वह अंगरेजों को सिखा देते हैं। पर, भगवानदीनजी, क्या आप इसे अंगरेज का कमाल नहीं कहेंगे, कि वह विलायत के लिए जहाज पर कदम रखते ही अपनी सारी हिन्दुस्तानी आदतों को ऐसे झड़क डालता है जिस तरह बत्तख अपने पीठ पर के पानी को।'

जुगमन्दरलालजी का यह कहना था कि अगरेजो मे दो ऐब बहुत जबरदस्त हैं। एक अपने रस्म-रिवाजो से बेहद मोहब्बत, दूसरे अपने देश और अपनी हुकूमत को सब से बड़ा और सब से बड़ी समझना। इन मामलों में वह कभी कभी अपनी अकल खो बैठते हैं और इसकी वजह से वह दूसरे मुल्कवालों को नीचा और अपने को ऊँचा समझने लगते हैं। पर यह ऐब तो थोड़ा बहुत सभी देशवालों में है। इसलिए अगर यह ऐब ऐबो से काट लिए जायँ तो अंग्रेज के हिस्से में कुछ गुण ही बचे रहते हैं। हमारे चेहरे पर सवाल उठता हुआ देखकर वह बोल उठे कि हां मै जानता हूं अग्रेज कई बातो में हिंदुस्तानियों से बहुत पीछे है, पर वह उन गुणों को लेने से कब इन्कार करते हैं ? वह हर धर्म की अच्छी बातें सुनने और अपनाने के लिए हमेशा तैयार मिलेंगे। और यह सब मैंने आक्सफोर्ड में रहकर अच्छी तरह से अध्ययन किया। बस अंगरेज में यही बड़ा ऐब है कि वह दबते को और दबाता है और इस ऐब की बाकायदा तालीम इंग्लिस्तान की हर युनिवरसिटी में दी जाती है। अगरेज का यह खयाल है कि दबने पर आदमी उभरता है और अगर उभरना नही जानता तो उसे दबाए रखना चाहिए। थोड़ा बहुत यह काम हर देश में चल रहा है। ब्रिटानिया आज हिंदुस्तानपर हुकूमत कर रहा है इसलिए उसका यह ऐब चमक उठता है, अगर हम इंग्लिस्तानपर हुकूमत कर रहे होते तो शायद हम भी ऐसा ही करते। फिर भी, भगवानदीनजी, आक्सफोर्ड का जीवन ऐसा जरूर है कि वहां से आदमी लेना चाहे तो बहुत कुछ ऐसा ले सकता है जो जीवन के लिए बड़ा उपयोगी हो सके। मैंने बहुत कुछ वहा से लिया है।

बैरिस्टरी में उनकी पूरी रुचि न थी। इसलिए उनको वह सफलता न मिल पाई जो मिलनी चाहिए थी। जजी, बैरिस्टरी से भले अच्छी रही हो, उनके रुचि के अनुकूल न थी। यह ठीक है, उन्होंने बैरिस्टरी की हैसियत से कभी किसी अपने मुवक्किल को यह कहने का मौका न दिया कि वह अपना काम जी से नहीं कर रहे थे और न जजी की हैसियत से कभी किसी को यह मौका दिया कि कोई उनकी तरफ उंगली उठा सके। पर यह सब काम वह कर्तव्य समझकर करते रहे। इससे लगाव न था। वह इस धुन में थे कि कोई पचास लाख रुपया लगाकर एक युनिवरसिटी खोल दे और वह उस की मदद से दस बीस या सौ-दोसौ ऐसे आदमी तैयार कर दें जो जल में कमल की तरह रहना जानते हों और अपने जीवन का दूसरोंपर असर डाल सकें। यह इच्छा वह अपने साथ लेकर मर गए और जो थोड़ा बहुत रुपया उन्होंने इकट्ठा किया वह उन्ही के लिए छोड़ गए जिनसे उन्होंने कमाया था। बैरिस्टरी और जजी उनके रास्ते में अड़ गई, उनका आदर्श न थी।

जुगमंदरलाल ने थोडी बहुत साहित्य सेवा भी की पर उसकी तह में इतना सेवा का भाव न था जितना एक खास उद्देश्य को पूरा करना। जिस उद्देश्य से उन्होंने सेवा की उसमें वह सफल भी हुए। पर उस सफलता से उन्हे कोई आनंद न मिला।

उनके जीवन की एक ही बात ऐसी है जिसके बारेमे हम उन से बात नहीं कर पाए और हम नही समझते उन जैसे स्वभाव के आदमी ने यह काम क्यों अपनाए। हो सकता है उनके कुछ जानकार उन बातो के बारे में कुछ प्रकाश डाले पर उससे हमारी तसल्ली न हो सकी। हमारी तसल्ली तो तभी होती जब वह खुद हम से मिले होते और उन्होंने अपना दिल खोलकर हमारे सामने रखा होता। वैसा अवसर न उन्हें मिला और न हमें। हम अपने ढंग के राजकाजी कामों में लगे रहे, वह अपने ढग के। वह दो काम उनके थे एक ऑनररी असिस्टंट कलेक्टरी और दूसरा अमन सभा की मेंबरी।

यह दोनों काम उन्होंने किस तरह निभाए यह भी हमको पता नहीं। हमारा मन तो यही कहता है कि यह काम जबर्दस्ती उनके सिर पड़े होंगे। पर वही मन यह मानने को तैयार नहीं कि वह इतने कमजोर थे कि जबर्दस्ती झुक जाते। हम यह मानने के लिए हर्गिज तैयार नहीं कि उनकी मर्जी के खिलाफ सरकार उनसे काम ले सकती थी। हां सकता है उन्होंने खुद उन कामों में देश की भलाई समझी हो पर इस बात को हमारा मन स्वीकार नहीं करता। यह काम इतनी चालाकी से भरे हुए हैं कि उन जैसा सरल आदमी इतनी चालाकी की बात नहीं सोच सकता। इसलिए हम चुप रहना ही ठीक समझते हैं।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी से उनका बहुत मेलजोल था पर हमारे पढ़नेवाले यह खूब समझ ले कि ब्रह्मचारीजी का आत्मा जुगमंदरलालजी की आत्मा को कुछ नहीं दे सकता था। हाँ, जाने अनजाने ब्रह्मचारीजी की आत्मा नें जुगमंदरलाल की आत्मा से बहुत कुछ पाया। ब्रह्मचारीजी कट्टर दिगंबरी थे जब कि जुगमंदरलालजी सार्वधर्मी थे। यह दूसरी बात है कि उमर भर उनकी कोशिश एक धर्म विशेष के अनुयायियों को उदार बनाने में लगी रही। उनके लिए यही ठीक था। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपनी एक सीमा बांध कर काम करते हैं। वह सीमा के बाहर तभी जाते हैं जब यह देख लेते हैं कि अपनी सीमा के अन्दर का काम जितना उन्होंने फैलाया है वह उनके इशारे पर चल सकता है। उनके चौबीसों घंटे मदद की अपेक्षा नहीं रखता। गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन के समय रियासतों को कभी नहीं छेड़ा। फौजों को भड़काने की बात तो जीते जी कभी नहीं सोची। इसका यह मतलब नहीं कि वह यह दोनों बातें नहीं चाहते थे। ठीक इसी तरह जुगमंदरलाल के जीवन से कोई यह पाठ न ले कि वह किसी धर्मविशेष के उपकार के लिए हमेशा के लिए बंध बैठे। जुगमदरलालजी के जीवन से पाठ तो सर्व धर्म का ही लेना चाहिए। पर सेवा का काम अपनी सकत के अनुसार करना चाहिए। अब पढ़नेवाले खुद सोच सकते हैं कि क्या जुगमंदरलालजी ब्रह्मचारीजी से कट्टरता सीखते? हाँ, ब्रह्मचारीजी ने उनसे उदारता

जरूर ली तभी तो वह अपना जीवन अन्त होने से पहले विधवा-विवाह का काम उठा सके। किसी हद तक धर्म के नाम पर जो पन्थ बन बैठे थे या जो आम्नाएँ चल पड़ी थी उनके खिलाफ हलकी आवाज उठा सके। ब्रह्मचारीजी गेरुएँ रंग के कपड़े पहनते थे। अगर गेरुआँ रंग किसी खास खूबी की निशानी है तब हम कहेंगे कि जुगमंदरलालजी का आत्मा गेरुएँ रंग के कपड़े पहने हुए था। जुगमदरलाल साधु थे पर उन्होंने न कभी अपने को साधु कहा और न उनको कहने दिया जो उन्हे ऐसा समझते थे। किसका साधु और किसका ज्ञानी, जुगमंदरलाल तो जब भी हमसे मिले तब उन्होने अपनेको असाधु और अज्ञानी ही कहा; यही उनकी साधुता थी यही ज्ञानीपन था। उनको अपनी असाधुता और अपने अज्ञान का पता था। ब्रह्मचारीजी में जो उदारता थी उसकी पंचानवे फी सदी देन जुगमंदरलाल की है और पाँच फी सदी अजितप्रसादजी की। अजित-प्रसादजी मे कट्टरता न थी, आम्नाय से बेजा मुहव्वत थी, जुगमंदरलालजी मे कुछ न था। वह सर्वधर्मी थे और धर्मविशेष की सेवा ऐसे कर रहे थे जैसे किसी जनरल को फौज की एक टुकड़ी दे दी जाय और वह उसीको सिखाए।

जुगमदरलाल धर्म ग्रंथोको पढ़ने में कोई कमी न रखते थे। वह बहुत गहरे जाते थे। उनकी मान्यता थी कि सर्वज्ञता तो क्या, कोई ऊँचे दर्जे का विद्वान भी झूठ नही लिख सकता। उनका खयाल था कि ग्रंथों में जो ऐसी बाते है जो आज के विज्ञान से मेल नहीं खाती, उनमें अपने ढंग की सचाई जरूर है। उदाहरण के लिए नरक की सात भूमियाँ मानी गई है। जैसे रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और महातमप्रभा। जो वर्णन इनका पुराने टीकाकारोंने किया है वह आज के विज्ञान से बिलकुल मेल नही खाता और आज का कॉलिज का पढ़ा हुआ लड़का उसे एकदम झूठ कह बैठेगा। जुगमंदरलालजी इसके खिलाफ थे। वह पुराने ग्रंथों को ऐसा रूप देना चाहते थे जो आज के विज्ञान से मेल खा जाय। एक बार वह हमको इन्ही नर्क भूमियो के बारे मे समझाने लगे। उन्होंने क्या समझाया यह तो हमे ठीक ठीक याद नही रहा, पर इतना जरूर याद है कि उन सब भूमियों का मेल उन्होंने आज के

भूगर्भशास्त्र से ठीक ठीक मिला दिया था, हमारी तसल्ली कर दी थी। आज तो शायद हमें उस बात पर हँसी आजाती, ठीक इसी तरह दो चन्द्रमा और दो सूरज को उन्होंने हमें यों समझाया था- कि आज भी ज्योतिषी दो चन्द्रमा और दो सूरज मानते है जिनका नाम है, उत्तरायण और दक्षिणायन। इस से हमारी तसल्ली हो गई थी। पर इस बात की याद आकर आज हमें हँसी आ जाती है। क्योंकि चन्द्रमा सूरज की तरह उत्तरायण दक्षिणायन होता तो है पर महीने मे दो वार हो जाता है जब कि सूरज साल भरमें दो बार, फिर यह खीचातानी के अर्थ हैं। विद्वानो को जब पुराने ग्रंथों से मोह हो जाता है, वह अपनी बुद्धि का उपयोग इसी प्रकार करने लगते हैं। लाहोर के मशहूर गुरुदत्त विद्यार्थी हुए हैं। उन्होंने वेद के शब्दोंपर अंग्रेजी में एक व्याख्या लिखी है, उसमे भी खीचातानी के अर्थ है। जब हम पच्चीस वर्ष के थे तब हमने उसको पढ़ा था। बड़ा अच्छा मालूम हुआ था। फिर बावन वर्ष की उमर में पढा तब उस पर हँसी आने लगी। विद्यार्थीजी ने अन्त मे अपने आप लिखा है कि कोई यह न समझे कि मैं खीच-तान कर माने कर रहा हू, वास्तव में यही माने हैं। यह पढकर हमे और हँसी आ गई। ठीक इसी तरह जुगमंदरलालजी की कोशिश थी कि वह अपनी सारी बुद्धि का उपयोग इस काम में करे कि पुराने ग्रंथो का मेल आज के विज्ञान से बिठा दे पर न उनको इतनी उम्र मिली और न इतना समय मिल पाया। उनका यह काम समाज के लिए उठते हुए जवानो के लिए और नए समय के लिए कहाँ तक ठीक होता यह कहना जरा मुश्किल है।

जुगमंदरलालजी साहित्य सेवी थे। ऊँचे दर्जे के साहित्य सेवी हो सकते थे पर उम्र ने उनका पूरा साथ न दिया। अग्रेजी पर उनको पूरा अधिकार था। अग्रेजी गज़ट के वह सपादक रहे। उसका अच्छी तरह सपादन किया।

यगमेन एसोसिएशन ने जब महामंडल[1] का रूप लिया तब जुगमंदर-लालजी उसमे काम करते थे। उनकी वजह से मडल ने रंग बदला। सन्

१. भारत जैन महामडल, १९१०।

११.की अपनी बैठक में जुगमंदरलाल के सभापतित्व में ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम की नींव पड़ी। उस आश्रम पर जुगमंदरलाल की बड़ी निगाह थी और कई बार उन्होंने हम से यह इच्छा प्रकट की कि अगर समाज उनका साथ दे तो वह अपनी सेवाएँ पूरी तौर से उसी आश्रम को दे सकते हैं और उसे बहुत जल्दी युनिवरसिटी का रूप मिल सकता है। पर वह मालवीयजी जैसे स्थिति पूजक नही थे। सुधारक वृत्ति के थे इसलिए वह समाज से इतना धन इकट्ठा नहीं कर सकते थे जिसे पाकर वह अपनी इच्छाओं और विचारो को अमली जामा पहना सकें। वह विचार वहीं मुरझाकर रह गए।

जुगमदरलालजी के जीवन से एक बड़ा जबरदस्त पाठ लिया जा सकता है। पर उस पाठ के लेने के लिए मामूली आत्मा नही चाहिए। बहुत जबरदस्त आत्मा उनके तरीके से लाभ उठा सकता है। स्वामी राम जिस तरह अपने जीवन के साथ खेल करते थे और खेल खेल में जिस तरह वह जान दे बैठे उसी तरह जुगमंदरलाल अपने चरित्र से खेल खेलते थे। वह जानबूझकर ऐसे काम कर बैठते थे, जिन्हे उनकी देखा देखी कोई कर बैठे तो न दीन का रहे न दुनिया का। पर जहाँ तक हमारा अनुभव है उन्होंने कभी ठोकर नही खाई। उनमें वह कमाल था कि वह उस कमरे में बैठकर वीतराग देवता का निर्विकार होकर ध्यान लगा सकते थे जिस कमरे मे चारों ओर नारियो की नग्न तसवीरें टंगी हुई हों। इस बात का कभी उन्होंने अभिमान नही किया, किसी से कहते भी नही फिरते थे। वह अपनी जाच करते थे, तजर्बे करते थे और उन्ही को नोट करते जाते थे। वह अपने पीछे अपने अनुभवो की डायरी छोड़ गए। वह पढ़ने को चीज है। हो सकता है कुछ लोगों की यह राय हो कि वह लंगोटी के कच्चे थे पर हम अपने अनुभव के आधारपर कहते हैं कि उन जैसा लंगोटी का पक्का शायद ही कोई समाज में और हो। अजितप्रसादजी उन तक पहुँचने की कोशिश मे थे पर पहुँच नहीं पाए। अजितप्रसादजी और जुगमंदरलालजी की लंगोटियो में यह अन्तर था कि अजितप्रसादजी

की लंगोटी मे प्रतिज्ञा का कमरबद था इसलिए वह बेफिक्र थे और पैंतालीस बरस की उम्र में विधुर हो जाने से उनका रास्ता और भी आसान हो गया पर जुगमंदरलाल की लगोटी में प्रतिज्ञा का कमर बद छोड़ प्रतिज्ञा का कच्चा धागा भी नहीं था। उन्होने तो अपने मनको इस ढंग का बना लिया था जो प्रतिज्ञा के किले में रहना अपने शान के खिलाफ समझता था। जुगमदरलाल का मन किले बाँधना कायरता का काम समझता था। उनका सुगठित और अप्रतिज्ञ मन किसी दृढ प्रतिज्ञ से टक्कर ले सकता था और विजयी हो सकता था। अब कहिए समाज में कौन ऐसा जवान है जो इस तरह की जोखम उठाए और दुनियादारी के सागर को बिना कपडे भिगोये पार कर जाय।

यह कुछ ऐसी बाते है जिन्हे हम ज्यादा खोल कर नही लिखना चाहते क्यो कि अभी हिंदुस्तानी समाज इन मामलों में इतना ऊचा नही उठ पाया जितना युरोपीय समाज। आजादी के बाद से इस तरह के मामलो मे थोडी बहुत उदारता आई है पर अभी तो ऊंचा उठने की जगह उच्छृंखलता की वजह से उसके कुछ नीचे गिरने का ही भय है।

जुगमंदरलालजी ने इस बारे मे जो परीक्षण किए वह हरएक आदमी के लिये नही है और यह वह खुद भी जानते थे इसलिए वे अपने परीक्षणों की बात अपने साथ ही ले गए। फिर हम भी क्यो बे मतलब उनको दूसरों तक पहुँचाने की कोशिश करे।

जुगमंदरलाल में अपनो से मोह था। पर यह बात कहते हुए हमारी तसल्ली नही हुई। उनका मोह जिस तरहका था उसको बतानेके लिए हमें भाषा में कोई शब्द नही मिलता। राग हम उसको कहना नही चाहते, प्रेम नाम देते हिम्मत नही होती अब कहें तो क्या कहे। बस यही समझना चाहिए जिससे उनको राग, प्रेम या मोह जो कुछ भी था वह उतनी देर के लिए था जितनी देर वह उससे एकमेक है। अगर एकमेक नहीं हैं तो वह सब खतम। इस राग की कमी की वजह से उन्हें अपने कर्तव्य पालन में बड़ा सुभीता होता था। यही कारण था कि वह मौत के लिए

ऐसे तैयार रहते थे मानो वह यह समझे हुए हैं कि अभी यमदूत उन्हे लेने आने को है। इस तरह का गुण हमें सेठ जमनालाल बजाज मे मिला। वह भी मौत से न डरते थे। स्वामी राम इस कोटि में नही आते, वह तो मौत को बगल मे दबाए फिरते थे। जुगमंदरलालजी ने कभी जान-बूझकर मौत की बात नही सोची, वह उसे कायरता मानते थे।

जुगमंदरलालजी का हमे विस्तृत जीवन नही लिखना है। वह इस योग्य हैं जरूर कि उनका विस्तृत जीवन लिखा जाय पर यह बात न हमारे मन मे है और न आगे भी ऐसा करने का खयाल है।

हम उनकी मृत्यु के बारे मे कुछ विस्तार से लिखते पर उसको हमने अपनी आँखों नही देखा। फिर भी हमारा यह अनुमान है कि ऐसे आदमी की मौत बहुत शांत होनी चाहिए।

: ८ :

वीरचंद गांधी

जैसे सूरज को दिखाने के लिये दीपक या किसी और चमकदार चीज की जरूरत नहीं होती वैसे ही दुनिया में कुछ आदमी ऐसे होते हैं जिनका परिचय देने के लिये जरूरी नही कि वह किस जगह पैदा हुए, उनके माता-पिता का क्या नाम था और किस धर्म को मानते थे। पर आजकल का रिवाज है कि ग्रहण के वक्त सूरज को देखने के लिए भी अपनी अपनी टेलिस्कोप बगल मे दबाकर लोग भागते हैं क्योकि सूरज को वह नगा नही देख सकते। हम भी थोड़ी बहुत ऐसी बेवकूफी उन वीरचंद गाँधी के बारे मे करेगे जिनको अमेरिका मे सन् १८९४ मे अमेरिकावालों ने अपने देशवासियो को हिंदू और हिन्दुस्तानी कहकर परिचय कराया था।

वीरचद गांधी उन्नीसवी सदी की पैदाइश थे। हिन्दुस्तान को गुलाम हुए पूरे छत्तीस वरस बीते थे। अभी तक इस देश मे ऐसे आदमी जीवित थे जिन्हे देश की गुलामी छू न पाई थी तभी तो वह अमेरिका के मेसॉनिक टेम्पिल मे एक दिन खड़े होकर अमेरिका वासियों से उस विषय पर चर्चा कर बैठें जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उस विद्या का जन्मदाता यूरोप है जिसे हिप्नाटिज्म नाम से पुकारा जाता है।

कितना आकर्षण रहा होगा उस वीरचंद राघवजी गाधी मे जिस वक्त मेसॉनिक टेम्पिल में हिप्नाटिझम पर बोलते हुए अुनने लोगों से कहा कि कमरे की बत्तियाँ हलकी कर दी जांय और जैसे ही हलकी हुईं कि उस सफेद कपड़े धारी हिन्दुस्तानी की देह से अेक आभा चमकने लगी और उसकी पगडी अैसी मालूम होने लगी मानो उस आदमी के चेहरे के पीछे कोई सूरज निकल रहा हो और जिसे देखकर अमेरिका वासियो का कहना था कि वह उस आभा को न देख सके, अुनकी आखें बंद हो गईं

ऐसे तैयार रहते थे मानो वह यह समझे हुए है कि अभी यमदूत उन्हे लेने आने को है। इस तरह का गुण हमें सेठ जमनालाल बजाज मे मिला। वह भी मौत से न डरते थे। स्वामी राम इस कोटि में नही आते, वह तो मौत को बगल में दबाए फिरते थे। जुगमदरलालजी ने कभी जान-बूझकर मौत की बात नही सोची, वह उसे कायरता मानते थे।

जुगमंदरलालजी का हमें विस्तृत जीवन नहीं लिखना है। वह इस योग्य हैं जरूर कि उनका विस्तृत जीवन लिखा जाय पर यह बात न हमारे मन मे है और न आगे भी ऐसा करने का खयाल है।

हम उनकी मृत्यु के बारे में कुछ विस्तार से लिखते पर उसको हमने अपनी आँखों नही देखा। फिर भी हमारा यह अनुमान है कि ऐसे आदमी की मौत बहुत शांत होनी चाहिए।

: ८ :

वीरचंद गांधी

जैसे सूरज को दिखाने के लिये दीपक या किसी और चमकदार चीज की जरूरत नहीं होती वैसे ही दुनिया में कुछ आदमी ऐसे होते हैं जिनका परिचय देने के लिये जरूरी नहीं कि वह किस जगह पैदा हुए, उनके माता-पिता का क्या नाम था और किस धर्म को मानते थे। पर आजकल का रिवाज है कि ग्रहण के वक्त सूरज को देखने के लिए भी अपनी अपनी टेलिस्कोप बगल में दबाकर लोग भागते हैं क्योंकि सूरज को वह नगा नही देख सकते। हम भी थोड़ी बहुत ऐसी बेवकूफी उन वीरचंद गाँधी के बारे मे करेगें जिनको अमेरिका मे सन् १८९४ में अमेरिकावालों ने अपने देशवासियो को हिंदू और हिन्दुस्तानी कहकर परिचय कराया था।

वीरचद गाधी उन्नीसवीं सदी की पैदाइश थे। हिन्दुस्तान को गुलाम हुए पूरे छत्तीस वरस बीते थे। अभी तक इस देश में ऐसे आदमी जीवित थे जिन्हे देश की गुलामी छू न पाई थी तभी तो वह अमेरिका के मेसॉ-निक टेम्पिल मे एक दिन खड़े होकर अमेरिका वासियो से उस विषय पर चर्चा कर बैठें जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उस विद्या का जन्म-दाता यूरोप है जिसे हिप्नाटिज्म नाम से पुकारा जाता है।

कितना आकर्षण रहा होगा उस वीरचंद राघवजी गाधी में जिस वक्त मेसॉनिक टेम्पिल में हिप्नाटिझम पर बोलते हुए अुनने लोगों से कहा कि कमरे की बत्तियाँ हलकी कर दी जांय और जैसे ही हलकी हुई कि उस सफेद कपड़े धारी हिन्दुस्तानी की देह से अेक आभा चमकने लगी और उसकी पगडी अैसी मालूम होने लगी मानों उस आदमी के चेहरे के पीछे कोई सूरज निकल रहा हो और जिसे देखकर अमेरिका वासियो का कहना था कि वह उस आभा को न देख सके, अुनकी आखें बंद हो गई

।१८ थोड़ी देर के लिए उन्हे ऐसा मालूम हुआ मानों वे सब समाधि-अवस्था में हों।

वीरचंद गाधी जैसे आदमी अगर भारतभूमि पैदा न करती तो हम हिन्दुस्तान के बड़प्पन का सन् सत्तावन के बाद कोई प्रभाव दूसरे देशोंपर न छोड़ पाते। बेशक हमारे देश ने कबीर जैसे सन्त पैदा किये पर ऐसों के दर्शन तो कोई विरला ही विदेशी पा सकता था। स्वामी रामकृष्ण क्या कभी अमेरिका जाने की सोच सकते थे? उस के लिये विवेकानन्द की ही जरूरत थी। वैसे ही त्यागी और मुनि जो किसी वजह से भारत-नही छोड़ सकते अुनके लिये दूसरो की जरूरत होती और अुन दूसरों में से अेक थे वीरचन्द गाधी।

वीरचन्द गाधी जैसे आदमी किसी जात या धर्म के नही समझे जाते। वह यह अच्छी तरह समझते है कि किसी देश, धर्म या समाज में पैदा हो जाना एक आकस्मिक घटना है जिनपर अुनका कोई वश नही चलता। वह यह भी अच्छी तरह समझते हैं कि सारे जगत का एक ही धर्म है। हाँ, अलग अलग नामधारी धर्म उस एक धर्म को अपने अपने ढग से कहते है। जिस तरह एक आदमी की जीवनी अपने अपने ढंग से अनेक आदमी कह डालते हैं— वैसे ही एक धर्म की व्याख्या अपने अपने ढग से अनेक धर्मावलम्वी कह डालते हैं या लिख डालते है। इस तरह के विचारो में डूबे वीरचद गाँधी। यह ठीक है कि किसी एक धर्म की तरफ से ही वह शिकागो के सर्व धर्म सम्मेलन में शामिल हुए थे पर वहाँ पहुँच कर जिस तरह बोले उससे सारे भारत की इज्जत बढ़ी और अमेरिका के लोगों ने उनकी बातो को ऐसे ही अपनाया मानो वह ईसाको सुन रहे हों।

वीरचंद गाँधी ने अपने पीछे काफी साहित्य छोडा। वह कई भाषाओ के जानकार थे। चार भाषाओं में बोल सकते थे, दस और भाषाओं मे काम चलाऊ पढ़ लेते थे। चौदह भाषाओं की जानकारी मामूली बात नहीं, पर हर शुद्ध हृदय के लिए वह मामूली बात है। आदमी को किसी एक विषय की लगन हो सकती है और उस विषय की खातिर वह

एक दो भाषा सीख सकता है, पर जिसे धर्म की लगन लग जाय, किसी नामधारी धर्म की नही, तो उस आदमी की रुचि हरभाषा के सीखने में लग सकती हैं। सब भाषाओ में धर्म के तत्वो का वर्णन अपने अपने ढंग से मौजूद है और उन सब ढगों को जाने बिना कोई आदमी किसी अेक भाषा मे भी धर्म की बात इस तरह नहीं कह सकता कि वह सबके मन लगती हो। वीरचंद ने धर्म तत्त्व का अध्ययन किया। इसलिये अंग्रेजी मे लिखी हुई किताबे सब लोगों के काम की हो सकती है फिर चाहे वह किसी भी धर्म के अनुयायी क्यों न हो। क्योकि उन किताबों के पढने में वह रस जरूर आयगा जो उसे अपने धर्म के पढ़ने से मिलता। हर धर्म मे कहने की शैली का भेद होता है, धर्म भेद इतना नही होता। इस तत्व को वीरचद गाधी खुब समझते थे। उनके ग्रथो को हमने पढा है, उनकी शैली में बड़ा आकर्षण है, सरलता तो है ही।

वीरचद की तरफ पढ़े लिखे जवान खूब खिचते थें, क्योकि उनकी युक्तियाँ नई और जोरदार होती थी और विचार एकदम मौलिक होते थे। संसार-चक्र को एक गति की परिधि मानकर जिस तरह उन्होने स्वस्तिक को सिद्ध किया है, वह अपने ढंग की अनोखी चीज है। स्वस्तिक के चारों हिस्से चार गतियाँ है और स्वस्तिक सिर्फ इस बात के कहने का एक चिह है कि मनुष्य गतिमें ही आत्मा का निस्तार होगा, बडी अनोखी कल्पना है। उनके ग्रथ पढने की चीज है। उनको पढ़कर आदमी में स्वतंत्र सोचने की इच्छा पैदा होती है और यह बात और ग्रथो मे देखने में कम आई है।

वीरचद भारत माता की अपने ढंग की अलग देन थे। वह उन आदमियों मे से एक थे जिन्हे सारा हिन्दुस्तान अपनाने में नही हिचकता और अपनाकर ऐसा अनुभव करता है मानो वह खुद ऊँचा उठ रहा है।

भारत जैन महामण्डल वर्धा के लोक-प्रिय प्रकाशन

प्यारे राजा बेटा (भाग १ और २) —रिषभदास रांका
जीवन जौहरी (स्व० जमनालालजी बजाज) —रिषभदास राका
गीता प्रवचने —आचार्य विनोबा
मराठी—
हिन्दी—सजिल्द
अजिल्द

धर्म और सस्कृति —जमनालाल जैन
समाज और जीवन —जमनालाल जैन
बुद्ध और महावीर तथा दो भाषण —कि. घ. मशरुवाला
उज्ज्वल प्रवचन —उज्ज्वल कुमारीजी
मणिभद्र (उपन्यास) —उदयलाल काशलीवाल
महावीर वाणी (जैन गीता) —(स्टॉक मे नही)
जो सन्तोने कहा —(स्टॉक मे नही)
सर्वोदय यात्रा —आचार्य विनोबा
तत्त्व समुच्चय —डॉ० हीरालाल जैन
तत्त्वार्थ सूत्र —प० सुखलालजी
महावीर का जीवन-दर्शन —रिषभदास रांका
आदर्श विवाह-विधि —रिषभदास रांका
—जमनालल जैन
मारने की हिम्मत (कहानी संग्रह) —म० भगवानदीन
सलौना सच (भाग १-२) (बालकोपयोगी) —म० भगवानदीन
हमारे साथी (संस्मरण और जीवन-चित्र) —म० भगवानदीन
विचार-कण (विचार-सूत्र) —म० भगवानदीन
स्वाध्याय (मनोविज्ञान) —म० भगवानदीन

हमारे यहां पूर्वोदय प्रकाशन, हेमचद मोदी ग्रंथमाला विचार प्रधान पुस्तके भी मिलती है।

सोचे और अपना जीवन समाज सेवामे लगावे। यह इस वात का सबूत है कि रामदेवीवाई विधवा विवाह को वुरा न समझते हुए भी यह हर्गिज न चाहती थी कि उनके आश्रम की विधवाये विवाह की वात सोचे या अैसे सम्पर्क मे आये जो उन मे विवाह की भावनाएँ जाग्रत कर दे। इसलिये उन्होने खुद ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी की बातें सुनी पर अपने यहाँ की विधवाओं तक उनकी पहुँच न होने दी।

ऊपर की वात मे सचाई है तभी तो उनकी पढाई तीन वेवायें आज भी समाज में पवित्र जीवन विताती हुई काम कर रही है। आश्रम टूटा सन् ३५ में। उन विधवाओं की उमर आश्रम छोडते वक्त खासी जवान थी और जिस आजादी के साथ उन्हे आश्रम छोड़कर रहना पड़ा उस आजादी मे यह विलकुल सभव था कि वह विवाह की तरफ झुक जातीं पर उन्होंने वैसा नही किया। वह अपने पैरोपर खड़ी हुईं और अपनी योग्यता के अनुसार आजतक समाज सेवा में लगी हुई हैं। हाँ आश्रम की अेक दो विधवाएँ अैसी भी है जो विवाहित जीवन विता रही है पर यह तो अपवाद के रूप मे नियम की सिद्धि मे सहायक है और फिर रामदेवी वाई विधवा विवाह के खिलाफ कहाँ थी और फिर आश्रम की जिन अेक दो विधवाओं ने विवाह किया उनमे समाज के अेक हिस्से ने हाथ वटाया। उन विधवाओं का जीवन आज अेक दफे की व्याही सधवा से किसी तरह वुरा नही है।

रामदेवीवाई के वारे मे हमने इस वात को इसलिये लिखा कि और विधवा आश्रमों की तरह यह महिलाश्रम भी इन वातों में वदनाम था और इस वदनामी में भी पुरुष कमेटी के एक दो मेंवरो का हाथ था। इसका नतीजा यह हुआ कि देववन्दी तीन भूत, यानी वाबू सूरजभानजी, पंडित जुगलकिशोरजी और ज्योतिप्रसादजी इस खयाल के हो गये कि महिलाश्रम इस वुराई से नही वच सकता। एक वार ज्योतिप्रसादजी ने खुद हम से रामदेवीवाई के दिल्ली महिलाश्रम के वारे मे कई हलकी वातें कहीं थीं; जिनको हमने चुपचाप सुन लिया था और जिनकी पूँछताछ फौरन आकर रामदेवीवाई से की थी। मालूम हुआ उन हलकी वातो में

नाम को सचाई न थी, यह भी मालूम हुआ कि पुरुष कमेटी के किस मेंबर को कृपा से इस तरह की हलकी बाते घर घर फैली है।

पुरुष कमेटी मनमुटाव के कारण ऐसे काम कर बैठती थी जिसके नतीजे से वह खुद न बच सकती थी, पर गुस्से में जिस तरह आदमी अपने बर्तन फोड़ डालता है, अपनी घड़ी तोड डालता है, अपना सर पीट लेता है और यह नही समझता कि वह बर्तन, घडी और सर उसी का है; उसी तरह पुरुष कमेटी महिलाश्रम की कमेटी बने रहते भी इस तरह के काम कर जाती थी, जिस से वह खुद बदनाम होने से नहीं बच सकती थी।

इसी सिलसिले में एक घटना बड़े मार्के की है। रामदेवीबाई के लड़के जैनेन्द्रकुमारजी की शादी हो चुकी थी। जो लड़की जैनेन्द्रकुमार को ब्याही थी उसका नाम है भगवती और जिन दिनो की हम बात कह रहे हैं उन दिनो भगवती की उम्र रही होगी सत्रह वर्ष की। हाँ, तो यह भगवती और जैनेन्द्र की बहन की लड़की ज्ञान, जो भगवती की ही उम्र की थी, दोनो जैनेन्द्रकुमार के मामा के साथ जमना नहाने गईं। जैनेन्द्रकुमार के मामा उन दोनो को तैरना सिखाना चाहते थे। जैनेन्द्र साथ में था। अगस्त का महीना था। जमना में पानी खूब था। जिस घाट पर भगवती और ज्ञान को नहलाया गया उस घाट पर बड़ी बेतुकी सीढ़ियाँ थीं। जैसे ही यह दोनो लड़की पानी मे गईं कि दोनों डूबने लगी। भगवती को तो जैनेन्द्र के मामाने सभाला और ज्ञान यानी जैनेन्द्रकुमार की भानजी बह गई। इतना अच्छा हुआ कि वह घबराई नही और बिलकुल तैरना न जानते हुए उसने अपने हाथ पानी से ऊपर न आने दिये इसलिये वह बहती गई, डूबी नही। किनारे पर अपने आप लग नही सकती थी। जैनेन्द्र के मामाने जैनेन्द्र को फौरन हुक्म दिया कि वह कूदकर अपनी भानजी को पकड कर लाये। जैनेन्द्र अच्छा तैराक है। वह कूदा और अपना अेक हाथ अपनी भानजी की बगल में डालकर उसे किनारे पर ले आया। न जाने कब, कैसे कहाँ से, पुरुष कमेटी का कोई मेम्बर, या उस मेम्बर का कोई रिश्तेदार जमना के किनारे खड़ा यह सब मामला देख रहा था। यह बात पुरुष कमेटी तक पहुँच गई। अब इस बात को लेकर कमेटी ने एक

सोचे और अपना जीवन समाज सेवामें लगावे। यह इस बात का सबूत है कि रामदेवीबाई विधवा विवाह को बुरा न समझते हुए भी यह हर्गिज न चाहती थीं कि उनके आश्रम की विधवायें विवाह की बात सोचे या अैसे सम्पर्क मे आये जो उन मे विवाह की भावनाएँ जाग्रत कर दे। इसलिये उन्होने खुद ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी की बातें सुनी पर अपने यहाँ की विधवाओं तक उनकी पहुँच न होने दी।

ऊपर की बात में सचाई है तभी तो उनकी पढ़ाई तीन वेवाये आज भी समाज मे पवित्र जीवन बिताती हुई काम कर रही हैं। आश्रम टूटा सन् ३५ में। उन विधवाओं की उमर आश्रम छोड़ते वक्त खासी जवान थी और जिस आजादी के साथ उन्हे आश्रम छोड़कर रहना पड़ा उस आजादी मे यह बिलकुल सभव था कि वह विवाह की तरफ झुक जाती पर उन्होंने वैसा नही किया। वह अपने पैरोंपर खड़ी हुईं और अपनी योग्यता के अनुसार आजतक समाज सेवा मे लगी हुई है। हाँ आश्रम की अेक दो विधवाएँ अैसी भी है जो विवाहित जीवन बिता रही हैं पर यह तो अपवाद के रूप मे नियम की सिद्धि मे सहायक है और फिर रामदेवी बाई विधवा विवाह के खिलाफ कहाँ थी और फिर आश्रम की जिन अेक दो विधवाओ ने विवाह किया उनमे समाज के अेक हिस्से ने हाथ बटाया। उन विधवाओं का जीवन आज अेक दफे की ब्याही सधवा से किसी तरह बुरा नही है।

रामदेवीबाई के बारे मे हमने इस बात को इसलिये लिखा कि और विधवा आश्रमों की तरह यह महिलाश्रम भी इन बातो में बदनाम था और इस बदनामी में भी पुरुष कमेटी के एक दो मेंबरो का हाथ था। इसका नतीजा यह हुआ कि देववन्दी तीन भूत, यानी बाबू सूरजभानजी, पंडित जुगलकिशोरजी और ज्योतिप्रसादजी इस खयाल के हो गये कि महिलाश्रम इस बुराई से नहीं बच सकता। एक बार ज्योतिप्रसादजी ने खुद हम से रामदेवीबाई के दिल्ली महिलाश्रम के बारे मे कई हलकी बातें कहीं थीं, जिनको हमने चुपचाप सुन लिया था और जिनकी पूंछताछ फौरन आकर रामदेवीबाई से की थी। मालूम हुआ उन हलकी बातो में

नाम की सचाई न थी, यह भी मालूम हुआ कि पुरुष कमेटी के किस मेंबर की कृपा से इस तरह की हलकी बाते घर घर फैली है।

पुरुष कमेटी मनमुटाव के कारण ऐसे काम कर बैठती थी जिसके नतीजे से वह खुद न बच सकती थी, पर गुस्से मे जिस तरह आदमी अपने वर्तन फोड़ डालता है, अपनी घड़ी तोड़ डालता है, अपना सर पीट लेता है और यह नही समझता कि वह वर्तन, घडी और सर उसी का है; उसी तरह पुरुष कमेटी महिलाश्रम की कमेटी बने रहते भी इस तरह के काम कर जाती थी, जिस से वह खुद वदनाम होने से नहीं वच सकती थी।

इसी सिलसिले मे एक घटना बड़े मार्के की है। रामदेवीवाई के लड़के जैनेन्द्रकुमारजी की शादी हो चुकी थी। जो लड़की जैनेन्द्रकुमार को व्याही थी उसका नाम है भगवती और जिन दिनों की हम बात कह रहे हैं उन दिनो भगवती की उम्र रही होगी सत्रह वर्ष की। हाँ, तो यह भगवती और जैनेन्द्र की वहन की लडकी ज्ञान, जो भगवती की ही उम्र की थी, दोनो जैनेन्द्रकुमार के मामा के साथ जमना नहाने गई। जैनेन्द्रकुमार के मामा उन दोनो को तैरना सिखाना चाहते थे। जैनेन्द्र साथ में था। अगस्त का महीना था। जमना मे पानी खूब था। जिस घाट पर भगवती और ज्ञान को नहलाया गया उस घाट पर वड़ी वेतुकी सीढ़ियाँ थी। जैसे ही यह दोनों लड़की पानी में गई कि दोनों डूबने लगी। भगवती को तो जैनेन्द्र के मामाने सभाला और ज्ञान यानी जैनेन्द्रकुमार की भानजी वह गई। इतना अच्छा हुआ कि वह घवराई नही और विलकुल तैरना न जानते हुए उसने अपने हाथ पानी से ऊपर न आने दिये इसलिये वह वहती गई, डूबी नही। किनारे पर अपने आप लग नही सकती थी। जैनेन्द्र के मामाने जैनेन्द्र को फौरन हुक्म दिया कि वह कूदकर अपनी भानजी को पकड कर लाये। जैनेन्द्र अच्छा तैराक है। वह कूदा और अपना अेक हाथ अपनी भानजी की वगल में डालकर उसे किनारे पर ले आया। न जाने कब, कैसे कहाँ से, पुरुष कमेटी का कोई मेम्बर, या उस मेम्बर का कोई रिश्तेदार जमना के किनारे खड़ा यह सब मामला देख रहा था। यह बात पुरुष कमेटी तक पहुँच गई। अब इस बात को लेकर कमेटी ने एक

तूमार खड़ा कर दिया। आश्रम को बदनाम इस तरह किया गया कि रामदेवीबाई का लड़का जैनन्द्र आश्रम की विधवाओ को (अब जरा हमारे पढनेवाले सोचे कि किस तरह सुई का फावड़ा बनता है) तैरना सिखाने ले जाता है और उनको बगल मे दाब दाबकर तैरता है। इस बात को लेकर पूँछ ताछ शुरू हुई और जब महिला कमेटी को सचाई का पता लगा तब उसे और ज्यादा पुरुष कमेटी से घृणा हो गई।

इसी तरह का एक और मामला उठ खड़ा हुआ। उसमें सचाई का अंश बहुत ज्यादा था। उसको लेकर पुरुष कमेटी ने जो बात खड़ी की वह भी एकदम झूँठ थी। वह मामला था कि आश्रम की एक पन्द्रह सोलह बरस की बाल-विधवा ने किसी को आश्रम से लिख लिख कर प्रेम-पत्र भेजना शुरू कर दिये। वह पत्र, करीब करीब सब, न जाने किस तरह, किसी के हाथ लग गये। इतना अच्छा था कि वह प्रेम-पत्र एकतर्फा थे। वह सबके सब यह साफ गवाही दे रहे थे कि जिसको यह प्रेमपत्र लिखे जा रहे है, न उसे उससे प्रेम है, और न उसने किसी पत्र का जबाब दिया है। हम जो बात लिख रहे है उसे हम पूरी जिम्मेदारी और जानकारी के साथ लिख रहे है। इस मामले में खास बात यह हुई कि जिसको वह प्रेमपत्र लिखे गये, उस तक वह जरूर पहुँचे। वह एक कर्तव्यशील और जिम्मेदार आदमी था। उसने उन सब पत्रो का हाल हमारे पास एक बद लिफाफे में इलाहाबाद भेज दिया। हम उन दिनों छपनचक पर पडित सुदरलालजी के पास ठहरे हुए थे। होनहार की बात जिस दिन वह पत्र हमारे पास पहुँचा उस दिन रामदेवीबाई हमारे पास मौजूद थीं। बद लिफाफा हमने ज्यो का त्यो पडित सुंदरलालजी को थमा दिया। रातका वक्त था। हमारी ऐनक हमारे पास न थी, हमने पडितजी से उसे पढ़नेको कहा। जैसे ही वह पत्र पढा गया रामदेवीबाई घबरा गईं और नाराज हो गईं। हमने और पडितजीने रामदेवीबाई को समझाया कि इस में न नाराज होने की बात है, न बिगड़ने को। यह आश्रम की खुश किस्मती है और आप के लिये भलाई की बात है कि जिस आदमी को यह प्रेम-पत्र लिखे गये है वह काफी समझदार है, अपने कर्तव्यको जानता है, आपकी

जिम्मेदारियोंको समझता है, वह कोई कदम हम से बिना पूछे उठाना नहीं चाहता। तब न डरकी बात है, न बिगड़ने की। पर हमारी इन बातोंका कोई असर रामदेवीबाई पर न हुआ। वह पहली गाड़ी से उस पत्र को लेकर दिल्ली पहुँची। वह जिम्मेदार आदमी उनका अपना ही आदमी था और जिस तरह उन्होंने उसकी खबर ली वह दूसरे का काम नहीं हो सकता था। उन्हें आश्रम से प्यारी कोई दूसरी चीज न थी और आश्रम से मतलब आश्रम की वह इज्जत, वह धाक, जिस के ऊपर वह जीती थी और जिस की वजह से तमाम महिलाओ में उनकी इज्जत थी। वह मामला महिला कमेटी के सामने आया और महिलाओं में से हर एक ने अलग अलग अपने अपने तरीके से उस लड़की से पूँछताछ की। मगर सब एक ही नतीजे पर पहुँची, दोष है तो लड़की का है और कुछ उसकी उम्रका। महिला कमेटी की राय न होते हुए भी रामदेवीबाई ने उस लडकी को अपने घर पहुँचा दिया। आश्रम में नही रखा। अब वह वेवा लडकी बहुत खुश है, समाज ने उसकी शादी कर दी और वह दो तीन बच्चों की माँ है। नाम हम जानबूझकर नही दे रहे। जिन जिनको नाम जानना चाहिये वह पहले से जानते हैं। यह मामला बेशक सगीन मामला था। पर पुरुष कमेटी ने इसका जो रूप देकर महिला कमेटी के पास भेजा उस मे सचाई का अश बहुत कम था। महिला कमेटी ने इस मामले को इतना बड़ा नही समझा जिस की वजह से कोई ऐसी कार्रवाई की जाय कि कमेटी के जो कायदे चले आ रहे हैं, उन में कोई बदलाव किया जाय।

इसी सिलसिले में यह कह देना जरूरी है कि एक बिल्कुल सच्चा और बहुत सगीन मामला रामदेवीबाई की मौत से दो बरस पहले हुआ, जिस से वह इतनी दुखी हुईं कि उन्हे आश्रम से, आश्रम की कई लड़कियों से और एक नौकर से इतनी घृणा हो गई कि अब वह इस फिक्र में थीं कि आश्रम बंद किया जाय। मजे की बात यह है कि इस सच्ची बात को समाज इस तरह पी गई, कि न पुरुष कमेटी उसे कभी जबानपर लाई न महिला कमेटी। उस मामलेका जिक्र विस्तार के साथ कुछ आगे किया जायेगा, यहाँ वह ठीक न रहेगा।

पुरुष कमेटी और महिला कमेटी में मन-मुटाव के कारण दो तरह के थे। अेक यह कि रामदेवीबाई आश्रम को अपनी मिल्कियत समझती है, दूसरा यह कि उन्होने महिला कमेटी को बहका रखा है और मनमाना खर्च करती है। इल्जाम दोनो करीब करीब ठीक है पर यह इल्जाम अैसे है जो थोडे बहुत हर संस्था के सचालक या सचालिका पर लगाये जा सकते है। शुरू शुरू मे कोई संस्था अेक आदमी की हाथ की हुए बगैर पूरी तरक्की नही कर सकती। काग्रेस जैसी बड़ी संस्था के बारे मे भी गान्धीजी के जीवित रहते बहुत लोगो का यही कहना था कि काग्रेस माने गान्धी और गान्धी माने कांग्रेस। रामदेवीबाई आश्रम की सर्वेसर्वा रहते कौड़ी कौडी का हिसाब रखती थी। हिसाब हर साल आडीटर जाँचता था। आॅडीटर की रिपोर्ट हमने पढ़ी है। उस रिपोर्ट में हिसाब रखने की तारीफ तो थी, पर अेक तारीफ यह थी कि वहाँ सारा हिसाब रखने का काम अेक लड़की करती थी। आॅडीटर का यह कहना था कि उसके जीवन मे उसने कभी किसी लड़की को इस तरह बाकायदा हिसाब रखते नही देखा।

हिसाब सम्बन्धी दो अेक बात लिख देना जरूरी है। रामदेवीबाई जब भी चन्दा करने जाती उनके साथ आश्रम की दो अेक लड़कियाँ जरूर रहती। रसीद लिखने का काम आम तौर से लड़कियाॅ करती। रसीदपर दस्तखत रामदेवीबाई करतीं। महिलाश्रम को हमने इतने पास से देखा था कि हम अेक अेक लड़की के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित थे। यह हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि अेक लड़की को छोड़कर आश्रम में कभी कोई लड़की अैसी नही आई जो हाथ की सच्ची न हो। सैकडों रुपये लड़कियों के हाथ से निकलते थे, कभी कोई धोखा नही हुआ। अेक बार अैसा हुआ कि महिला कमेटी के नाम या शायद रामदेवीबाई के नाम अेक पत्र आया जिसमे यह लिखा था कि उन्होंने जो दस रुपये दिये थे उसकी कोई रसीद आजतक नहीं मिली। पत्र मे जो दातारो की सूची निकली है उसमे उनका नाम नही है। यह पत्र किसी तरह पुरुष कमेटी के हाथ लग गया। इसको लेकर अेक बड़ा बखेड़ा शुरू होगया। यह मामला हम तक पहुँचा। हमने कमेटी की तरफ

से उस आदमी को पत्र लिखवाया कि वह यह बतायें कि दस रुपये कब और कहा दिये ? वहाँ से चिट्ठी का जवाब आगया। उस चिट्ठी मे जो जगह और तारीख दी हुई थी उस तारीख और जगह की रसीदें निकाल कर देखी गईं। उसी सिलसिले में और कागज देखे गये। उन कागजो में यह लिखा हुआ मिला, कि उस दिन के हिसाब मे दस रुपये बढ़े। और उन दस रुपयो की गुमनाम रसीद काट दी गई। मामला साफ होगया और शिकायत करनेवाले सज्जन को दस रुपये की डुप्लीकेट रसीद भेज दी गई। पर न उन सज्जन को तसल्ली हुई और न पुरुष कमेटीने यह कहना छोड़ा कि दस रुपये का गबन हुआ।

इसी तरह का दूसरा किस्सा और है। एक मर्तबा रामदेवीबाई कलकत्ते गई हुई थी। होनहार, हम भी वहाँ मौजूद थे। हमारे साथ हमारा सेक्रेटरी कालीचरण मौजूद था। अेक दिन रामदेवीबाई की साथकी लड़कियाँ कही बाहर गई हुई थी और रामदेवीबाई एक जगह चन्दा करने वाली थी, उनको किसी अैसे आदमी की जरूरत थी जो पैसा जमा कर सके और रसीदें काट सके, हमने कालीचरण को उनके सुपुर्द कर दिया। उसने उनका सब काम कर दिया। जब रामदेवीबाई कलकत्ता से चदा इकट्ठा कर के दिल्ली पहुँची और उनकी रसीदों की जाँच पुरुष कमेटी ने की तो अस्सी रुपये की भूल निकाली। भूल निकालने के माने यह कि अस्सी रुपया रामदेवीबाई खागईं। मनमुटाव के कारण पुरुष कमेटी जो जी में आता कह बैठती थी। यह मामला पहले रामदेवीबाई के सामने आया। उन्होंने देखते ही बता दिया कि यह पुरुष कमेटी के समझ की भूल है, इसमे कोई रुपया कम नही है। बात कुछ न थी। कालीचरण हिन्दी में अेक को अैसा लिखता था जो अंग्रेजी का नौ पढा जाता था लेकिन वह हिन्दी में नौ भी इस तरह लिखता था जो उस तरह के लिखने को न जानता हो, तो उसे हिन्दी का एक पढ़ ले। एक रसीद पर अकों में जो दस की रकम लिखी गई थी उसके एक के अक को पुरुष कमेटी ने नौ का अंक समझ लिया। वह रकम नव्वे हिसाब में ले ली। अस्सी रुपये अपने आप कम हो गये। अब पुरुष कमेटी को राम-

ह समझाया पर पुरुष कमेटी न मानी। रामदेवीबाई दलील ऐसी थी जिसका कोई काट नहीं था, दूसरी दलील ऐसी। जिसे किसी सस्था की कार्यकारिणी कमेटी संस्था के संचालक के हैसियत से जरूर मान लेती। फिर जब वह रसीद कटी हुई है और अगर कोई शक है तो दातार से लिखकर पूछा जा सकता है। पर इन बातो की पर्वाह वह करे जिसे न्याय करना हो। जिसे बदनाम करना हो वह यह तकलीफ अपने सिर क्यों ले? रामदेवीबाई की दो दलीले यह थी, एक तो यह कि उन्हें अच्छी तरह याद है उन्होंने उस आदमी से दस रुपये लिये, जिसके नाम से रसीद कटी है, दूसरी जोरदार दलील यह थी कि कालीचरण हर जगह एक को ऐसे ही लिखता है जैसा इस रसीद में, फिर रकम जो अंकों में लिखी हुई है वह रसीद में दूसरी जगह अक्षरो में लिखी हुई है इस से साफ पता लग जाता है कि नौ का अक नहीं है एक का है। हम यह मानने के लिए तयार नहीं कि पुरुष कमेटी यह न समझ गई हो कि वह गलती पर है पर उसने उस बात का बतक्कड बना दिया। आखिर कालीचरण की गवाही पर मामला तय हुआ। और वह रकम नव्वे की जगह दस ही रही।

पुरुष कमेटी के आये दिन के झगड़े से बचने के लिए महिला कमेटी की मदद से पुरुष कमेटी टूट गई। हां, इतना जरूर हुआ कि जो थोड़ा बहुत रुपिया उसके कब्जे में था वह उस रुपए को दबाकर बैठ गई। उस रुपये को किसी दूसरी सस्था में लगा दिया। पुरुष कमेटी के टूटने से आश्रम को कोई धक्का नहीं पहुँचा और महिला कमेटी की मदद से आश्रम का काम हमेशा की तरह चलता रहा।

यह बात पहले कही जा चुकी है कि पुरुष कमेटी के सब आदमी आश्रम के खिलाफ न थे, हाँ, ज्यादा आदमी खिलाफ थे। थोड़े आदमी आश्रम के काम से खुश थे और वह निजी हैसियत से आखिर दिन तक मदद करते रहे।

महिलाश्रम सन् १८ मे खुला। सन् २१ में काँग्रेस ने असहयो आन्दोलन शुरू कर दिया और आन्दोलन से कोई सस्था अछूती न रह

गई। महिलाश्रम कैसे बच सकता था ? रामदेवीबाई का लड़का जैनेन्द्र बनारस युनिवरसिटी से पढ़ाई छोड़ कर असहयोग आन्दोलन मे शामिल हो गया। वह रामदेवीबाई के भाई के पास नागपुर पहुँच गया। रामदेवीबाई के भाई सन् २१ के मार्च महीने में जेल चले गये। जेल जाने से पहले वह एक पत्र रामदेवीबाई की भौजाई को लिख चुके थे कि उनको आन्दोलन मे शामिल होना चाहिये। नतीजा यह हुआ कि उनकी भौजाई, जो उनके साथ महिलाश्रम मे काम कर रही थी, नागपुर चल दी। उसके चले जाने से आश्रम के काम मे थोड़ी बहुत अड़चन हुई। असहयोग आन्दोलन जो उठा तो वह खत्म हुआ जब सन् ४७ में हिन्दुस्तान आजाद हो गया। सन् २१ से सन् ३४ तक जेल जाने का काम इतना जोरोंपर था कि मुश्किल से कोई घराना बच पाया, जिसने अपने मे से एक दो को जेल न भेजा हो। महिलाश्रम की दो तीन लड़कियो को पुलिस की मार खानी पड़ी, एक को तीन या छः महीने की जेल भुगतनी पड़ी। जो लड़की जेल गई, वह बालविधवा थी और जेल जाने के समय उसकी उम्र १८-१९ से ज्यादा न थी। वह लड़की जब जेल से छूट कर आई तो महिला कमेटी ने उसका स्वागत किया और आश्रम में उसे फिर जगह मिल गई। यह हम इसलिये लिख रहे है कि महिलाश्रम समय की लहर से कितना जानकार रहता था, कितना सतर्क था। रामदेवीबाई अगर उदार महिला न होती तो उनके आश्रम से ऐसी आशा नही की जा सकती थी। राजकाजी सभाओ में आश्रम की सब लड़कियो को जाने की छुट्टी थी। यह ठीक है कि रामदेवीबाई उनको अपने तरीके और अपने इन्तजाम से भेजती थी। आश्रम की एक लड़की ने लाहोर काँग्रेस के मौके पर लेडी वालिंटियर कोर मे काम किया था। जब जब दिल्ली में काँग्रेस हुई तब तब सारा का सारा आश्रम किसी न किसी तरह काँग्रेस की सेवा में लग जाता था। रामदेवीबाई ने अपनी मेहनत से यह कर लिया था कि आश्रम प्रयाग महिला विद्यापीठ की परीक्षाओ का केन्द्र बन गया था। इससे आश्रम की लड़कियो को बड़ा सुभीता हो गया था।

महिला-आश्रम दिल्ली मे ऐसी जगह था जिसके सामने तीन-चार गज चौड़ी गली थी और उस गली के दूसरी तरफ टूटे-फूटे मकानों का खडहर था। उस खंडहर पर मुसलमानों की कुछ झोपड़ियाँ थी। खडहर के दाईं तरफ एक मसजिद थी, बाईं तरफ कुछ दूकाने थीं और पीछे आबादी थी। आबादी सब मुसलमानो की थी। आश्रम के दायें-बायें और पीछे हिन्दू आबादी थी। इसलिए हिन्दू-मुसलमान लड़ाई के लिए महिला-आश्रम सरहद्दी सूबे की तरह सरहद्दी मकान था। आश्रम की लड़कियों का रहन-सहन कुछ इस ढंग का था जिस से सामने की मुसलमान आबादी को कोई दिक्कत न होती थी। आश्रम और मुसलमान आबादी में कोई मनमुटाव न था।

आश्रम के सामने के खंडहर का मालिक तो था कोई हिन्दू पर कब्जा उस पर मुसलमानों का था। अदालत से हिन्दू का कब्जा साबित भी हो गया और उसको डिक्री भी मिल गई थी, पर लड़ाई-झगड़े के डर से वह उस खडहर पर कभी कब्जा न पा सका और मुसलमानो की झोप-ड़ियाँ उस वक्त तक हमेशा बनी रही जब तक वहाँ आश्रम रहा। आश्रम को उन झोपड़ियो की वजह से कुछ आराम ही था, तकलीफ न थी। गर्मियों के दिन में खंडहर खुले मैदान का काम देता था और रात को ठंडक बनाए रखने में बड़ी मदद देता था। उस खडहर पर अपनी चारपाई डालकर हम भी हफ्तों सोये है और रामदेवीबाई की बहू-बेटिया भी उस खंडहर पर रात को सो लेती थी। यह इस बात का सुबूत है कि रामदेवीबाई का व्यवहार दूसरे धर्मवालो के साथ कितना उदार था। पर जब हिन्दू-मुसलमान लड़ाई छिड गई तब आपसी व्यवहार जीवित रहने पर भी दोनो तरफ के गुडे अच्छे व्यवहार को इतना दबा देते हैं कि मरे से बदतर और बेकार हो जाता है। अब जब एक बार हिन्दू-मुसलमान लडाई छिड़ी तो महिला-आश्रम जो सरहद्दी मकान था वह कैसे बच सकता था! जब महिला-आश्रम के दायें बाये मकान मुसल-मानो पर पत्थर फेंक रहे थे और मुसलमानों की सामने की आबादी हिन्दुओं के मकान पर पत्थर फेंक रही थी तो आश्रम उस हमले से कैसे बचता?

ऐसे हमलो के वक्त हर घर में जितनी हिम्मत की जरूरत होनी चाहिये उतनी रामदेवीबाई में थी। आश्रम में कोई मर्द तो रहता नही था, सब लड़किया या औरतें होती थी। उनमें हिम्मत बनाए रखना मामूली काम न था। पर रामदेवीबाई के रहते हुए आश्रम सबका सब हिम्मत का पुतला बन जाता था। अगर ऐसा न होता तो सन् २४ के हिन्दू-मुस्लिम दंगे के बाद क्या आश्रम उस सरहद्दी मकान मे रह सकता था? हिन्दू-मुस्लिम लड़ाई के शांत होने के कुछ ही दिनो बाद हम दिल्ली पहुंचे और देखा था कि आश्रम की बाइयो और सामने की झोपड़ियो में रहनेवाली मुसलमान औरतों का व्यवहार फिर वैसे ही चलने लगा था जैसा पहले था, मानों उस लड़ाई से उन्हे सरोकार ही न हो। उस सरहद्दी मकान को रामदेवीबाई ने घबराकर या डर कर कभी छोड़ना नही चाहा। उसे छोड़ा तो इस वजह से छोडा कि उस मकान को किसी ऐसे आदमी ने मोल खरीद लिया था जो खुद उसमें रहना चाहता था, किराये पर देना नही चाहता था। इस मकान के बदलने के बाद उन्हें दूसरा मकान परेड ग्राउड के सामने चादनी चौक की सड़क पर मिल गया और वहीं उनकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

धार्मिक क्रियाकाड में वह किसी महिलाश्रम की सचालिका से कम न थी। हमारा अनुभव है कि वह उस क्रियाकांड मे इतना विश्वास न रखती थी जितना और रखते है पर उस क्रियाकाड के निभाने में वह कभी भूल न करती थी। उन्हे क्रियाकाड का अभिमान न था। क्रियाकांड की वजह से वह अपने को बहुत बड़ी महिला न समझती थी। वह आश्रम की लड़कियो पर अपना क्रियाकांड नही लादना चाहती थी। जो क्रियाकाड आश्रम में था वह इतना था जितना रिवाज में था या जितने की समाज उस आश्र से आशा रखती थी। उनका क्रियाकांड किसी दूसरे को बिलकुल नही अखरता था। कोई कितना ही क्रियाकांड से रहित क्यो न हो अगर वह सच्चा पक्का आदमी है तो उनकी नजर में ऊंचा ही बना रहेगा। सादगी पसन्द वह बचपन से थी। विधवा होने पर वह सादगी और बढी और महिलाश्रम की सचालिका होने पर वह सादगी एक

५८, एक सफेद साड़ी और पेटीकोट तक आ गई। मरते दम तक उन्होंने नल का पानी कभी नहीं पिया। इस तरह के और छोटे-मोटे त्याग जो हर घर में महिलायें करती हैं उन सब को वह मरते दमतक निभाती रहीं।

हम ऊपर कह आये है, उनकी दोनो लड़कियां आश्रम में काम करती थी। दोनों विवाहित थी। दोनो मां वन चुकी थी। उसमें से एक दिल्ली रहती थी। उधर तो पुरुप कमेटी रामदेवीबाई पर यह इल्जाम लगाती कि यह अपनी लडकियों को पालती हैं, इधर उनके दामाद यह इल्जाम लगाते, कि इन्होंने अपनी लड़कियाँ हमसे छीन लीं। उनका यह हाल था कि एक ओर उन्हे अपने दामादों से भुगतना पड़ता, दूसरी ओर पुरुष कमेटी से। स्त्रियों के मामले मे पतियों को भड़का देना वहुत आसान काम हैं। पुरुप कमेटी ने इस हथियार से काम लेने में कोई कमी न रखी। कमेटी ने दिल्ली वाले दामाद को इतनी बुरी तरह भड़काया कि एक दिन बीच बाजार में उसने अपने पत्नी की खवर ली। उसकी पत्नी, यानी रामदेवीवाई की वड़ी लड़की इतनी नेक थी कि उसने अपनी शांति और वुद्धिमानी से बाजार के दूकानदारो को इतना अच्छा पाठ दिया कि वह सब दंग रह गये। वात यह थी कि जब उसका पति उसे सरे वाजार पीटने लगा तब वह चुपचाप वैठकर पिटने लगी। यह देख दूकानदार उसके पति को रोकने दौड़े, वह एकदम दूकानदारो से बोली, पति पत्नी के बीच तुमको आने की कोई जरूरत नही। अव दूकानदार क्या करते, वह अप-नासा मुंह लेकर रह गए। उसकी इस वात का असर पति पर पड़ता ही, और वह भी एकदम शान्त हो गया।

उसी दामाद को अेक वार और इसी तरह पुरुष कमेटी के किसी मेम्बर ने भड़का दिया था। वह मंदिर में रामदेवीबाई के साथ ०।४ '। पर उतारू हो गया था। और लोगों की मदद से वह मामला शान्त। एक वार हमने खुद जैनेन्द्र को अपनी माँ को वचाने के लिये अपने से लड़ते देखा था। लड़ने का मतलव कोई यह न समझे कि मार नौवत आई थी। जैनेन्द्र ने सिर्फ इतना ही किया था कि वह

कर बैठ गया था। इतने में रामदेवीबाई वहाँ से चली गई और अपने काम मे लग गईं। जैनेन्द्रने उसे छोड़ दिया। इस बात को लेकर कई दिनतक रामदेवीबाई जैनेन्द्र को समझाती रही कि उसे वैसा नही करना चाहिये था। यह बात जैनेन्द्र के गले किसी तरह न उतर सकी। रामदेवीबाई को अपने दामाद पर पूरा भरोसा न था इसलिये वह जैनेन्द्र से कहने लगी कि अजब नही कि उनका दामाद जैनेन्द्र से बदला ले या अपने दोस्तों से जैनेन्द्र को कुछ नुकसान पहुँचावे। जैनेन्द्र अपने बहनोई के स्वभाव से इतना ज्यादा परिचित था कि उसने बड़े विश्वास के साथ अपनी माँ को जवाब दिया कि माताजी जो पुरुष स्त्रियों पर बहुत जल्दी हाथ उठाने को तैयार हो जाते है वह पुरुषो से बदला लेने की जल्दी नही सोच सकते, आप बेफिकिर रहिये। जो उसके दोस्त है वह मेरे भी दोस्त है।

यह बात हम सिर्फ इसलिये लिख रहे हैं कि पढ़नेवालें उनकी जिन्दगी से यह पाठ ले सकें कि जब आदमी अपने धुनका पक्का होता है और सच्चे दिल से समाज की भलाई मे लगता है तब सारी आफतों को बड़ी आसानी से झेल लेता है। वह हमेशा अपने सारे कुटुंबियों, अपने इष्ट मित्रो को उसी काम में झोकने के लिये तैयार रहता है। जिस तरह घी का रोजगार करने से हाथ चिकने हुए बगैर नही रह सकते इसी तरह समाज सेवा के किसी काम मे लगने पर स्वार्थ-सिद्धि हुए बिना नही रह सकती। जो चौबीस घंटे समाज सेवा के लिये दे रहा है वह खायगा कहां से? उसका खाना-पीना-पहनना समाज के कुछ लोगो को निरी स्वार्थ-सिद्धि जँचें तो जँचा करे, पर जो लोग उसे पास से देखेंगे वह उसे स्वार्थी नही परमार्थी कहेगें। रामदेवीबाई को पास से देखनेवाली महिला कमेटी परमार्थी समझती थी और हरदम शक्तिभर हर तरह उनकी मदद के लिये तैयार रहती थी। अगर ऐसा न होता तो इतने विरोध रहते कभी संभव था कि वह एक दिन भी दिल्ली टिकने दी जाती?

खास मौके पर रामदेवीबाई में बेहद बल आ जाता था। कमजोर माँ अपने बच्चे पर आफत आने पर शेरनी जैसा काम कर बैठती है। रामदेवीबाई महिलाश्रम को अपने बच्चे जैसा प्यार करती थी। आश्रम

अब उनका सब से प्यारा अकेला बच्चा था। उसकी खातिर वह अपनी कोख से जन्म दिये बेटी-बेटों को जान खतरे में डाल सकती थी। यह औरों के लिये भले बड़ी बात हो, उनके लिये बड़ी बात न थी। इस तरह के काम कर डालना उनके लिये स्वभाव बन गया था जिस तरह राजपूत औरतो का अपने पतियो और बेटों को देश के खातिर लड़ाई के मैदान में मरने के लिये भेजना। रामदेवीबाई का अकेला लड़का जैनेन्द्र जब सन् २३ मे होशंगाबाद जेल में था और जब किसी वजह से उसे डंडा बेड़िया मिली हुई थी तब इस खबर को सुनकर क्या रामदेवीबाई तनिक भी चकित हुईं? क्या उसे देखने होशंगाबाद दौड़ी? वह अपने आश्रम के काम में दिल्ली ऐसी ही लगी रही मानों कुछ हुआ ही नही। वही रामदेवीबाई जिनके लिये बाप और भाई के मरने पर कफन आ गया था वह उस वक्त बिलकुल न घबराईं जब उनका भाई उसी सन् २३ में नागपुर जेल में ५६ दिन से उपवास कर रहा था और सूखकर काटा हो गया था। क्या स्त्री, क्या पुरुष जिसे देश या समाज से मुहब्बत हो जाती है वह अपने बच्चों पर आई आफत देख सकते है पर देश या समाज पर आई आफत देखकर विह्वल हो उठते है जैसे मामूली मायें अपने बच्चो के लिए। देश और समाज के काम में लगे आदमी पर, कुछ लोगों को, स्वार्थ का इल्जाम लगाने की आदत होती है। यह है तो बुरी बात पर इसलिये अच्छी है कि इस से देश और समाज सेवको की जाँच हो जाती है। अगर वह कच्चे या सचमुच स्वार्थी हुए तो देश और समाज सेवा छोड़ बैठते है और अगर वह पक्के हुए तो उस ओर कान दिये बिना ऐसे बढे चले जाते है जैसे आंखों से अंधोटे बांधे टांगे का घोड़ा।

रामदेवीबाई देश प्रेम और समाज प्रेम में डूबकर हिम्मत की देवी बन गई थीं। उनमे आत्मविश्वास था। उन्हें मालूम था कि आत्मविश्वास सफलता है, और आत्मदुविधा असफलता। उनका लड़का जैनेन्द्र गुजरात जेल में था। उसकी बहू को जो यह बात आई कि वह अपने पति से मिले। उन्हें अपनी लड़की से यह बात मालूम हुई। वह उसे लेकर गुजरात चलने को लिये तैयार हो गईं। बहू के पास उनका [illegible] छः महीने का

एक बच्चा था। दिल्ली से डाक गाड़ी मे सवार होकर, रामदेवीबाई बहू-बेटी को साथ लेकर गुजरात चल दी। गाडी गुजरात रातको ग्यारह बजे पहुँचती थी। रामदेवीबाई और उनकी बेटी की आख झपक गई। बहू को, जिसे अपने पति के दर्शन की धुन थी, नीद क्यो आने लगी? वह हर स्टेशन का नाम पूछती और पूछती, गुजरात और कितने स्टेशन है? आखिर उसका मन चाहा स्टेशन गुजरात आ गया। गाड़ी थमते ही बच्चा कुली को सौप नीचे उतर पड़ी। सास ननद को जगाकर बोली, 'उतरिये, गुजरात आगया'—वह दोनों उतरे उतरे, कि गाड़ी चल दी। गाड़ी दो चार फर्लांग भी न चल पाई कि रामदेवीबाई ने जजीर खेच दी। गाड़ी रुक गई। डाक गाड़ी का गार्ड डिब्बे के पास आया, पूछा, किसने जजीर खेंची? रामदेवीबाई बोली, जंजीर हमने खेंची, हमारा छह महीने का बच्चा कुली के हाथ में गुजरात स्टेशन पर रह गया है। गाड़ी को फौरन वापस लौटाओ।

गार्ड अग्रेज था। सन् १९३१ का मामला था। सारा हिन्दुस्तान असहयोग आन्दोलन की गूज से गूंज रहा था। गार्ड ने मामले को ठीक ठीक समझकर बड़ी नम्रता से रामदेवीबाई से कहा, देखिये, गाड़ी को पीछे ले जाने में आवपौन घंटा खराब चला जायगा, स्टेशन यहाँ से चार फर्लांग से ज्यादा दूर नही है, हम आपके साथ एक आदमी देते है, वह आपका सामान लेकर स्टेशन तक पहुंचा देगा।

रामदेवीबाई बोली, यह सब नही हो सकता आपको गाड़ी वापिस लौटाना होगी! देर लगने से हमारे बच्चे को अगर कुछ हो गया तो तुम जिम्मेदार होंगे।

गार्डने अच्छी तरह समझ लिया कि वह मामूली महिला से बात नही कर रहा, ऐसी महिला से बात कर रहा है जो सरसे पावतक आत्म विश्वास की पुतली है। बोला,

बहिनजी, हम आपको ट्राली देते है, ट्राली चलानेवाला देते है उसपर आपका सामान लाद देंगे। आप और आपकी साथी बहन उसपर बैठ जायं आपको कोई दिक्कत नहीं होगी। जरासी देर मे स्टेशन पहुंच जायेंगी।

रामदेवीबाई बोली, नही, यह सब नही हो सकता। गाड़ी वापिस लौटाइये। देर न कीजिये। हम गाड़ी को आगे न चलने देंगे।

रामदेवीबाई कह रही थी कि उनकी लड़की में कमजोरी आ गई, वह अपनी मांसे बोली, 'अम्मा, गार्ड साहब ठीक कह रहे हैं, हमको अंधेरे में चलना नही पड़ेगा। हाथ ठेला दे रहे है जल्दी स्टेशन पहुंच जायेंगे।

रामदेवीबाई ने अपनी लड़की का हाथ झिटक कर कहा, तुझको क्या मालूम, कि गाड़ी स्टेशन से कितनी दूर है, और हाथ ठेले से वहाँ पहुँचने में कितनी देर लगेगी, इतनी देर में बच्चेपर क्या बीतेगी, कौन जाने ?

गार्ड और रामदेवीबाई की बातचीत में देर लगने से कुछ मुसाफिर गाड़ी से उतरकर गार्ड के पास आ गये। उन आदमियों ने रामदेवीबाई को समझाया, गाड़ी के पीछे करने में आध पौन घंटे से कम न लगेगा, क्योकि गाड़ी सिग्नल से बाहर हो चुकी है। अब गार्ड साहब या तो खुद जायँ, या किसी को स्टेशन भेजें, स्टेशन मास्टर सिग्नल गिरावे, गार्ड साहब ड्राइवर को सिग्नल दें, तब गाड़ी चले। गार्ड साहब ट्राली देरहे हैं, यह ट्राली आपको बैठने के पाँच मिनिट बाद स्टेशन पहुँचा देगी। इसपर रामदेवीबाई राजी हो गईं, और अपनी लड़की के साथ ट्रालीपर बैठकर स्टेशन पहुँच गईं।

एक बार आश्रम की लड़कियो के साथ रेल से सफर कर रही थी। रेल के सब डिब्बे भरे हुए थे। एक डिब्बे में सिर्फ चार पठान बैठे थे। वह किसी को अन्दर न आने देते थे। रामदेवीबाई पहुँची, डब्बे को खोला और उसमें सब लड़कियों को बिठा दिया। उन पटानों पर उनका इतना रौब छाया कि वह आपस में कहने लगे, "यह औरत नही हो सकता, मर्द है।" सचमुच रामदेवीबाई के चेहरे पर ज़िम्मेदारी का काम करते करते मर्दानगी टपकने लगी थी। वह जब भाषण देतीं, उनकी आवाज मे मर्दानगी की धमक रहती, जैसी ऍनीबिसेट की आवाज में। एक बार नागपुर किसी काम से आईं, वहाँ उनका भाषण हुआ। बॅरिस्टर अभ्यकर यानी प्रांतिक कांग्रेस कमेटी का प्रेसीडेण्ट, उनका भाषण सुनकर, उनका